निमाड़ी का भाषा-विज्ञान
वर्ण और वर्तनी

मणिमोहन चवरे 'निमाड़ी'

मील का पत्थर...

निमाड़ी लोकभाषा के मर्मज्ञ साहित्यकार श्री मणिमोहन चवरे द्वारा लिखित 'निमाड़ी का भाषाविज्ञान वर्ण और वर्तनी' को मैंने आद्योपांत पढ़ा। पूर्व-पीठिका में लेखक ने इस पुस्तक के निर्माण के विषय में पर्याप्त आधार दिए हैं। ग्रंथ की रचना करते समय उन्होंने मुझसे संपर्क किया। अपने भाषा एवं व्याकरणिक शोधपरक मंथनकाल में, मुझे निमाड़ क्षेत्र में लगभग बारह वर्षों तक रहने का अवसर मिला था। पुस्तक को उस दृष्टि से देखने पर भी चवरे जी का लेखन स्तुत्य है।

भाषा वैज्ञानिकों की दृष्टि से भाषा और बोली एक ही भाषायी परिवार की होती है किंतु सामाजिक दृष्टि से विचार करें तो दोनों का आधार भिन्न-भिन्न है। सामाजिक विकास और परिवर्तन के दौर में भाषा की प्रकृति और क्षेत्र में बदलाव होता रहता है किंतु बोली में नहीं, इसलिए उस समाज की जनभाषा कभी भाषा का रूप धारण कर लेती है और कभी बोली का। निमाड़ी बोली ने धीरे-धीरे लोकभाषा का रूप ले लिया है। उसमें साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित होने लगी हैं। विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में उसे सम्मिलित किया गया किंतु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उस पर सामग्री उपलब्ध नहीं होने से मानकता का अभाव रहा।

मानकता के प्रयास में मुझे लगता है कि श्री चवरे की यह पुस्तक निमाड़ी भाषा की प्रथम मानक कृति है। इस पुस्तक में वह सब कुछ है जो निमाड़ी भाषा के स्वरूप को सुव्यवस्थित करने के लिए आवश्यक है। पुस्तक की भाषा रोचक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित है। आशा है, लोकभाषा के भाषाविज्ञान को लेकर यह पुस्तक मील का पत्थर साबित होगी और निमाड़ी रचनाकारों का मार्गदर्शन करेगी। मैं श्री चवरे को इस श्रमसाध्य शोधकार्य के लिए साधुवाद देता हूँ और पाठकों से आग्रह करता हूँ कि वे इसे अवश्य पढ़ें।

डॉ. प्रेम भारती
भोपाल
मो. 0 94244 14190

प्रस्तुत 'E' संस्करण की भूमिका

परिवर्तनशीलता, जीवंत-भाषा का एक अहम गुण है। प्रस्तुत ग्रंथ, 'निमाड़ी का भाषा-विज्ञान वर्ण और वर्तनी' का पहला संस्करण सन् 2014 में प्रकाशित हुआ था; जिसके केंद्र में,केन्द्रीय निमाड़ी का मापक था। बाद के वर्षों में, निमाड़ी के सभी क्षेत्रीय रूपों के अध्ययन, एकीकृत निमाड़ी की अवधारणा तथा वर्ण और वर्तनी की मानकता पर शोध-कार्य संपन् हुआ; जिसे प्रस्तुत पुस्तक के अलावा, 'निमाड़ी लोकभाषा उद्भव विकास स्वरुप और साहित्य' नामक पुस्तक सन् 2025 में भी देखा जा सकता है।

लगभग 500 वर्षों से चले आ रहे, निमाड़ी की विशेष ध्वनि, 'विलंबित-अ' के, प्रयोग पर हुए शोध के फलस्वरूप, अब अधिकांश एकाक्षरी शब्दों की इस विशेष ध्वनि के मात्रा चिह्न (s) को, वर्तनी से हटा लिया गया है। निमाड़ी में इन नवाचारों का आत्मसातीकरण, उल्लेखित दोनों पुस्तकों में देखा / समझा जा सकता है। (कृपया प्रस्तुत "E" पुस्तक में, 'निमाड़ी में नवाचार' नामक अध्याय क्र.33, पृष्ठ 114 पर अवलोकन करे।)

'निमाड़ी का भाषाविज्ञान वर्ण और वर्तनी'(2014), के प्रथम संस्करण, में कुछ काँट-छाँट तथा बदलाव करके, इसके जिस 'E' पुस्तक संस्करण, २०२५ को तैयार किया है; उसे निमाड़ी रचनाकारों तथा भाषा प्रेमियों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

रामनवमी 2025

- मणिमोहन चवरे

निमाड़ी का भाषाविज्ञान
वर्ण और वर्तनी

मणिमोहन चवरे 'निमाड़ी'

मिलिंद प्रकाशन
हैदराबाद

निमाड़ी का भाषाविज्ञान वर्ण और वर्तनी

लेखक : मणिमोहन चवरे 'निमाड़ी'

प्रकाशक

मिलिन्द प्रकाशन

4-3-178/2,कन्दस्वामी बाग

हनुमान व्यायामशाला की गली

सुल्तान बाजार

हैदराबाद -500095

फोन : 24753737 / 32912529

(c) लेखकाधीन

अक्षर संयोजक

श्रीराममूर्ति डाटा प्रासेसर्स

9247632717

आवरण

संशोधित 'E' पुस्तक(उपहार)संस्करण, रामनवमी 2025

प्रथम संस्करण

2014

मूल्य

रु.200/- (दो सौ रुपये मात्र)

ISBN : 81-86907-97-1

NIMADI KA BHASHAVIGYAN VARN AUR VARTANI

By MANI MOHAN CHOUREY 'NIMADI'

निमाड़ी लोकभाषा का

यह शोधपरक ग्रंथ

उन समस्त स्नेही सज्जनों को

समर्पित है,

जो

अपनी मातृभाषा से

लगाव रखते हैं।

श्रद्धावनत

... लेखक

मील का पत्थर...

निमाड़ी लोकभाषा के मर्मज्ञ साहित्यकार श्री मणिमोहन चवरे द्वारा लिखित 'निमाड़ी का भाषाविज्ञान वर्ण और वर्तनी' को मैंने आद्योपांत पढ़ा। पूर्व-पीठिका में लेखक ने इस पुस्तक निर्माण के विषय में पर्याप्त आधार दिए हैं। ग्रंथ की रचना करते समय उन्होंने मुझसे संपर्क किया। अपने भाषा एवं व्याकरणिक शोधपरक मंथनकाल में, मुझे निमाड़ क्षेत्र में लगभग बारह वर्षों तक रहने का अवसर मिला था। पुस्तक को उस दृष्टि से देखने पर भी चवरे जी का लेखन स्तुत्य है।

भाषा वैज्ञानिकों की दृष्टि से भाषा और बोली एक ही भाषायी परिवार की होती है किंतु सामाजिक दृष्टि से विचार करें तो दोनों का आधार भिन्न-भिन्न है। सामाजिक विकास और परिवर्तन के दौर में भाषा की प्रकृति और क्षेत्र में बदलाव होता रहता है किंतु बोली में नहीं, इसलिए उस समाज की जनभाषा कभी भाषा का रूप धारण कर लेती है और कभी बोली का। निमाड़ी बोली ने धीरे-धीरे लोकभाषा का रूप ले लिया है। उसमें साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित होने लगी हैं। विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में उसे सम्मिलित किया गया किंतु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से, उस पर सामग्री उपलब्ध नहीं होने से मानकता का अभाव रहा।

मानकता के प्रयास में मुझे लगता है कि श्री चवरे की यह पुस्तक निमाड़ी भाषा की प्रथम मानक कृति है। इस पुस्तक में वह सब कुछ है जो निमाड़ी भाषा के स्वरूप को सुव्यवस्थित करने के लिए आवश्यक है। पुस्तक की भाषा रोचक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित है। आशा है, लोकभाषा के भाषाविज्ञान को लेकर यह पुस्तक मील का पत्थर साबित होगी और निमाड़ी रचनाकारों का मार्गदर्शन करेगी। मैं श्री चवरे को इस श्रमसाध्य शोधकार्य के लिए साधुवाद देता हूँ और पाठकों से आग्रह करता हूँ कि वे इसे अवश्य पढ़ें।

डॉ.प्रेम भारती
भोपाल
मोबाइल : 09424413190

निमाड़ और निमाड़ी

मध्य प्रदेश का दक्षिण-पश्चिमी भू-भाग निमाड़ अंचल के नाम से जाना जाता है। यह क्षेत्र प्रदेश के अलीराजपुर, धार, इंदौर, देवास, होशंगाबाद, बैतूल तथा महाराष्ट्र के अमरावती, बुलढाना, जलगाँव, धुले और नंदूरबार जिलों से सीमाबद्ध है। पच्चीस हज़ार वर्ग किलोमीटर में फैले निमाड़ क्षेत्र में लगभग इकतीस लाख निमाड़ी भाषी लोग निवास करते हैं। खंडवा और खरगोन जिले आदर्श निमाड़ी के केंद्र हैं। धार जिले की कुक्षी, मनावर और धरमपुरी तहसीलें भी निमाड़ी भाषी क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं। अलीराजपुर तथा जोबट के सीमावर्ती क्षेत्रों की आदिवासी बोलियों पर निमाड़ी का प्रभाव है। बुरहानपुर जिले में खानदेशी का प्रभाव निमाड़ी पर देखा जा सकता है। उत्तरी खरगोन में निमाड़ी पर मालवी की छाप है। जबकि हरदा जिले में बुंदेली से प्रभावित होकर निमाड़ी का एक रूप भुआणी कहलाता है।

निमाड़ी लोकभाषा, निमाड़ांचल के अधिकांश लोगों की मातृभाषा है तथा इस भू-भाग के विस्तृत ग्रामीण क्षेत्र की संपर्क भाषा भी है। व्याकरणिक तत्वों पर खरी उतरनेवाली निमाड़ी का समृद्ध लोकसाहित्य विश्वस्तरीय है। पश्चिमी हिंदी समूह की, देवनागरी में लिखी जाने वाली निमाड़ी, एक समर्थ एवं स्वतंत्र लोकभाषा है।

* * *

पूर्व पीठिका

पिछले पैंतीस वर्षों में, विश्व में लगभग तेरह हज़ार बोलियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। वर्तमान में, भारत में, आधुनिक भारतीय आर्यभाषा-कुल की लगभग 570 भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें 122 भाषाएँ और 234 बोलियाँ तो अभी फल-फूल रही हैं किंतु बाकी 214 भाषाएँ मरणासन्न स्थिति में हैं। इनके बोलने वालों की संख्या तेज़ी से घट रही हैं। संविधान की आठवीं सूची में 22 भाषाएँ हैं जिनमें कुछ ऐसी भाषाएँ भी हैं जिनको बोलने वालों की संख्या निमाड़ी-भाषियों के आधे से भी कम है। सरकारी फाइलों में नाम दर्ज करा लेने मात्र से भाषा का भला नहीं होता। भाषा को जीवित रखना है तो उसे कंठ से कलम तक कायम रखना होगा। यही सोच, 'निमाड़ी का भाषाविज्ञान वर्ण और वर्तनी' की पूर्व-पीठिका में काम कर रही है।

साहित्य में घुसपैठ कर चुकी बाजार की भोगवादी आपाधापी में, आत्मश्लाघा के वशीभूत कतिपय रचनाकारों ने अपने आप को, अपनी रचनाओं के आगे खड़ा कर लिया है। निमाड़ी भी इस संक्रम से अछूती नहीं रह सकी। इसका असर यह हुआ कि साहित्य में सोच और भाषा में समझ का अवमूल्यन होने लगा, परिणामस्वरूप तथाकथित लेखकों की भीड़ में पाठक कहीं खो गया। दूसरी ओर आधुनिक विकास के दौर में, औपचारिक तकनीकी शिक्षा तथा रोजी-रोटी दिलाने में अक्षम जन-भाषाएँ उपेक्षित होकर विलुप्त होने लगी। ऐसे में उनके अस्तित्व को बचाए रखना चिंत्य एवं चुनौती भरा काम है। बोलियाँ हमारी संस्कृति की संवाहिका हैं, इनका संरक्षण तो करना ही होगा। नए जमाने के साथ कद बढ़ाना अच्छी बात है, परंतु पैर ही जमीन पर नहीं रहे तो ऊँचाई का आधार क्या होगा! इसी चिंतन को लेकर निमाड़ी पर शोध कार्य शुरू किया था, परिणाम आपके हाथों में है।

प्रस्तुत ग्रंथ निमाड़ी लोकभाषा का अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान है। इसमें निमाड़ी के उद्‌भव, विकास और स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही भाषा के मानक तथा शुद्ध-अशुद्ध रूप को समझने का प्रयत्न किया है। वर्ण-समूह, निषिद्ध ध्वनियाँ, अयोगवाही विलंबित 'अऽ' के अलावा वर्ण और वर्तनी पर अध्ययन को केंद्रित किया है। इसमें निमाड़ी का समाज-भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन भी सम्मिलित है जिसके अंतर्गत मानक-अमानक रूप, वाग्‌दोष सुधार तथा भाषा और बोली को नए मानदंडों पर परखने का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रंथ की प्रस्तुति में उद्‌भट भाषावैज्ञानिक डॉ.भोलानाथ तिवारी और नवाचार पर आधारित व्यावहारिक व्याकरण के शोधकर्ता एवं सर्जक डॉ.प्रेमभारती मेरे प्रेरणास्रोत रहे हैं। डॉ.कृष्णलाल हंस की 'निमाड़ी और उसका साहित्य', निमाड़ी को पहचान दिलाने वाले पद्‌मश्री पं.रामनारायण उपाध्याय की 'लोक साहित्य समग्र', लोककला और संस्कृति के अध्येता श्री वसंत निरगुणे की 'निमाड़ी संस्कृति और साहित्य', प्रसिद्ध ललित-निबंधकार डॉ:श्रीराम परिहार की 'निमाड़ी साहित्य का इतिहास', प्रो.दीपचंद जैन तथा डॉ.कैलाश तिवारी की 'हिंदी और उसकी विविध बोलियाँ', डॉ.प्रहलादचंद्र जोशी की 'मालवी और उपबोलियों का व्याकरण', तथा डॉ.राजेंद्र प्रसाद सिंह की 'नाग परिवार की भाषाएँ' नामक कृतियाँ मेरे अध्ययन की संदर्भ ग्रंथ रही हैं। मैं इन सभी विद्वानों का आभार मानते हुए एक बार पुनः डॉ.प्रेम भारती के रचना कौशल को नमन करता हूँ जिनकी 'हिंदी वर्ण और वर्तनी' की तर्ज पर मैं अपनी इस पुस्तक को व्यवस्थित कर सका। प्रस्तुत ग्रंथ में निमाड़ी अक्षराओं के प्रतिलेखन एवं कुशल संयोजन के लिए डॉ.राधा तथा मनमोहक आवरण के लिए 'वी.डिजाइन' सहित, मिलिंद प्रकाशन की पूरी टीम ने जिस तल्लीनता से कार्य संपन्न किया है उसके लिए, आत्मीय बंधु श्री श्रुतिकान्त भारती का मैं हृदय से आभारी हूँ। पुस्तक की आकर्षक प्रस्तुति उन्हीं की मुस्तकिल सूझबूझ का परिणाम है और हाँ, उनसे संपर्क कराने में मेरे परम मित्र श्री अक्षय कुमार चवरे का योगदान तो मेरे लिए अविस्मरणीय है। जीवंत भाषा सतत परिवर्तनशील होती है। उसका शब्दकोश, व्याकरण अथवा भाषावैज्ञानिक अध्ययन कभी पूर्ण एवं अंतिम नहीं हो सकता। मैंने तो बस प्रयत्न का आगाज भर किया है।

मणिमोहन चवरे 'निमाड़ी'

सी-1, रुनाल मिराकल, सेक्टर-29,
पी.सी.एन.टी., पूना-411 044
मोबाइल - +91 9850980334
e.mail : mmchourey@gmail.com

अनुक्रमणिका

	निमाड़ और निमाड़ी	
1.	पूर्व पीठिका	
2.	आर्य शब्द की अवधारणा	11
3.	भारत की भाषाओं में निमाड़ी	13
4.	निमाड़ी का उद्‌भव एवं विकास	18
5.	निमाड़ी का स्वरूप	21
6.	निमाड़ी की सामान्य विशेषताएँ	24
7.	बोली और भाषा	27
8.	लोकभाषा की जीवंतता	30
9.	ध्वनि और लिपि	32
10.	वर्ण और अक्षर	33
11.	वर्तनी	34
12.	निमाड़ी में वर्तनी की समस्या	36
13.	निमाड़ी वर्णमाला	37
14.	निषिद्ध ध्वनियाँ	40
15.	निमाड़ी वर्णों का वर्गीकरण	42
16.	मात्राएँ एवं बारह खड़ी	46
17.	निमाड़ी स्वर ध्वनियाँ	48
18.	अयोगवाह:बिन फेरे हम तेरे	53
19.	विशेष ध्वनि विलंबित-अऽ	55
20.	विलंबित अऽ : प्रयोग एवं वर्तनी	60
21.	सानुनासिक ध्वनियाँ	68

22.	नासिक्य व्यंजन (न-ण-म)	75
23.	बहुरूपिया वर्ण 'नऽ'	78
24.	प्राचीन ड-ढ तथा विकसित ड़-ढ़	83
25.	व्यंजन वर्ण ब-व	85
26.	श्रुतिमूलक य-व	88
27.	'र' के रूप	90
28.	विशिष्ट ध्वनि 'ळ'	94
29.	उष्म वर्ण स-ह	98
30.	प्राणीकरण	103
31.	श्र-क्ष-ज्ञ-ऋ का निमाड़ीकरण	107
32.	एकाक्षरी शब्दों की वर्तनी	111
33.	निमाड़ी में नवाचार	114
34.	अविकारी शब्दों की वर्तनी	116
35.	संख्यावाचक शब्दों की वर्तनी	121
36.	हल् चिह्न का प्रयोग	125
37.	विचारणीय अशुद्धियाँ	127
38.	देशी-विदेशी भाषाओं के आगत शब्द	132

आर्य शब्द की अवधारणा

भाषा विज्ञान, भारोपीय भाषाओं के संदर्भ में, आर्यों की उत्पत्ति, प्रवास और भाषा संस्कृति की अवधारणा को लेकर चला है। इस विचारधारा ने हमारी सभ्यता को गहराई से प्रभावित किया है।

हमारे प्रयत्नों की कमी और पुख्ता प्रमाणों के अभाव तथा फिरंगियों की दूरगामी कुचालों ने भारत की गरिमा और एकता पर प्रहार करके हमको भ्रमजाल में उलझाए रखा था। अब परतें खुलने लगी हैं।

आर्य शब्द आप्रवासी आर्यों के आने के वर्षों पूर्व, भारतीय सभ्यता में प्रचलित रहा है। भारतीय दर्शन में जो मन, वचन, कर्म और धर्म से श्रेष्ठ हो, वही आर्य है। हमारे वेदों, पुराणों और शास्त्रों में आर्य शब्द का प्रयोग श्रेष्ठ, कुलीन, सभ्य, सज्जन और साधु के लिए होता रहा है। संस्कृत तथा परवर्ती साहित्य में आदरणीय, आचार्य या गुरु के लिए आर्य तथा पत्नी द्वारा पति के लिए 'आर्य-पुत्र संबोधन' के अनेक उदाहरण हैं। आर्य शब्द का प्रयोग किसी जाति के लिए नहीं वरन् अभिजात वर्ग के लिए हुआ करता था। किसी भी वर्ण अथवा जाति का व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता और सज्जनता के कारण आर्य कहला सकता था।

उपर्युक्त संदर्भों के उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि आर्य शब्द एवं आर्य लोग भारत की संस्कृति का अटूट हिस्सा रहे हैं। इस बात को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि आर्य लोग भारत से बाहर, अन्य देशों में भी रहे होंगे, क्योंकि श्रेष्ठ और सज्जन लोग तो दुनियाँ में कहीं भी हो सकते हैं। एशिया और यूरोप महाद्वीपों में आर्यों के निवास की जानकारी मिलती है। भारत के उत्तर में भी तो आर्यावर्त था।

आर्य शब्द, आर्य चिह्न, आर्य संस्कृति का, थोड़े बहुत बदलाव से अलग-अलग भागों में पाया जाना इस बात का संकेत है कि प्राचीन काल में भारतीय, यूनानी, ईरानी, रोमन, जर्मन और सैल्ट जातियों के कुछ पूर्वज कहीं तो भी इकट्ठे रहे होंगे। हो सकता है उनका मूल स्थान भारत के उत्तर पश्चिम में कहीं रहा हो और वहाँ से उनका फैलाव दुनियाँ के विभिन्न भागों में हुआ हो। कालांतर में उन्होंने अपनी अलग-

अलग संस्कृति, सभ्यता और भाषाएँ विकसित कर ली होंगी। यह घटना भारतीय वैदिक काल में आप्रवासी आर्यों के आने के अनेक वर्षों पूर्व की रही होगी।

संसार की भाषाओं के अध्ययन में, विदेशियों की यह तोहमत कि भारत के आर्य अन्य देशों से आकर बसे हुए लोग हैं और उन्हीं की संस्कृति से भारतीय सभ्यता का विकास हुआ, एक भ्रम फैलाने की, उनकी सोची समझी साजिश हो सकती है।

कभी तो दुनिया के बड़े भू-भाग की आबादी इकाई अंकों में रही होगी, कुछ लोग साथ-साथ रहे होंगे, उनकी कोई बोली भी रही होगी। दुनियाँ के अन्य बड़े भू-भागों में भी ऐसा ही कुछ हुआ होगा। कालांतर में प्राकृतिक या जीवन संघर्ष आदि कारणों से मानव समुदायों का और उनके साथ उनकी बोली, संस्कृति का भी स्थानांतरण हुआ होगा। एक ही परिवार की भाषाओं का सुदूर भिन्न-भिन्न स्थानों पर पाया जाना अथवा एक क्षेत्र में विभिन्न परिवार की भाषाओं का चलन होना इसी का परिणाम है जो कि प्राकृतिक एवं प्राचीन है। मानव समुदायों के साथ भाषाओं की यात्राओं से जहाँ एक ओर भाषा-परिवारों के बीच भौगोलिक दूरियाँ बढ़ती गई वहीं दूसरी ओर धार्मिक मान्यताओं में और लोकाचार में स्थानीय परिवर्तन के साथ मूलभूत विचारों और भाषागत शब्दों की बनक में भी कुछ समानताएँ बनी रही।

यह माना जा सकता है कि वैदिक युग के आसपास कुछ विदेशी लोग, बड़े समूहों में, संभवतः प्राकृतिक विपदाओं के चलते या बेहतर जीवन की तलाश में उत्तर पश्चिम से भारत आए, और यहीं बस गए। इन्हीं आगंतुकों को आप्रवासी आर्य अथवा विदेशी आर्य माना जा सकता है।

प्रस्तुत ग्रंथ में देश के आर्यों को 'भारतीय आर्य' या 'आर्य' शब्द से इंगित किया है जबकि बाहर से आकर बसे आर्यों को 'आप्रवासी आर्य' या 'विदेशी आर्य' से संकेतित किया गया है।

* * *

भारत की भाषाओं में निमाड़ी

परदेशी भाषाएँ - भारत भूमि पर जिन प्राचीनतम आप्रवासियों का पता चलता है, वे थे निग्रिटो। ये लोग अफ्रिका से आकर वर्तमान तमिलनाडु और अंडमान में बस गए। इनकी भाषाओं के तो अब अवशेष भी भारतीय भाषाओं में नहीं मिलते। इनके बाद दक्षिण चीन से आष्ट्रिक लोग भारत आए। ये लोग मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल, निकोबार, तमिलनाडु में बस गए। इनके साथ कोल, खासी, मुंडा, संथाली, कोरकू, निकोबारी आदि भाषाएँ भारत पहुँची। हम इन्हें निषाद, कोल, भील आदि नामों से जानते हैं। इन आष्ट्रिक भाषाओं का कुछ प्रभाव भारतीय आर्य भाषाओं तथा पूर्वी भारतीय भाषाओं पर पड़ा।

निग्रिटों और आष्ट्रिकों के बाद आदि मंगोल मूल के किरात यहाँ आए और पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी भारत में फैल गए। ये लोग अपने साथ नागा, गारो, बोडो, लोलो, नेवारी आदि भाषाएँ लेकर आए। आगे चलकर इन भाषाओं ने आर्य और द्रविड़ भाषाओं को थोड़ा बहुत प्रभावित किया।

द्रविड भी आर्यों से पूर्व भारत में थे। इनकी द्रविड़ भाषाएँ यूराल-अल्टाइक परिवार की हैं। आज इनका क्षेत्र मूल रूप से दक्षिण में है, परंतु ये लोग मध्य भारत और उड़ीसा में भी बसे हुए हैं। मध्य प्रदेश, बिहार और उड़ीसा में गोंडी तथा ओरावीं भाषाएँ इसी परिवार की हैं।

ईसा से डेढ़-दो हज़ार वर्ष पूर्व भारत-ईरानी के मूल भाषी, विदेशी आर्य भारत आए और अपने साथ ईरानी, अवेस्ता तथा प्राचीन फारसी भी साथ लेते आए। बाद में इन्हीं विदेशी भाषाओं और भारत की तत्कालीन प्रचलित प्राकृतिक भाषाओं के संपर्क और समन्वय से वैदिक भाषा विकसित हुई। यही वैदिक भाषा, भारतीय आर्य भाषाओं का प्राचीन रूप मानी जाती है।

भारतीय भाषाओं का विकास - भारत में प्रमुख रूप से चार भाषा-परिवार पाए जाते हैं। भारतीय आर्य भाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवार, मुंडा भाषा परिवार और नाग भाषा परिवार। हमारा अध्ययन निमाड़ी लोक भाषा पर केंद्रित है जो कि भारतीय आर्य भाषा परिवार के अंतर्गत आती है। भारतीय आर्य भाषाओं की जड़ें, संसार की एक

दर्जन से अधिक भाषायी कुनबों में, सबसे महत्वपूर्ण भारोपीय-भाषा-परिवार में जमी हुई हैं। भारोपीय भाषा परिवार का क्षेत्र एशिया में भारत, बांग्लादेश, श्रीलंका, पाकिस्तान, अफगानिस्तान व ईरान और यूरोप में रूस, रोमानिया, फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन, इंग्लैंड व जर्मनी के अलावा अमेरिका, कनाड़ा, अफ्रिका व आस्ट्रेलिया तक है।

विश्व के सर्वाधिक बड़े भू-भाग में बोली जानेवाली भारोपीय परिवार की इन भाषाओं की संख्या दुनिया में सर्वाधिक है, और इनके बोलने वालों की संख्या भी संसार में सर्वाधिक है। दुनिया का श्रेष्ठ साहित्य भी इन्हीं भाषाओं में रचा गया है। सर्वाधिक भाषा-वैज्ञानिक-अध्ययन भी इन्हीं भाषाओं में हुआ है। इन भाषा-परिवारों के प्रमुख विद्वानों में पाणिनी और भर्तृहरि जैसे भारतीय ऋषियों के नाम, गर्व के साथ लिए जाते हैं।

इन परिवारों की आरंभ में कोई तो भाषा रही होगी, जिसका मूल-स्थान एशिया तथा यूरोप के संधि स्थल पर कहीं रहा होगा। वहाँ के मूल निवासी प्राकृतिक आपदाओं अथवा आक्रमणकारियों के दमन से त्रस्त होकर, एशिया यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया व अफ्रिका आदि स्थानों की ओर कूच कर गए होंगे। आज के दूरस्थ महाद्वीप संभवतः उस जमाने में पास-पास रहे होंगे।

लगभग 2600 वर्ष ई.पू. भारोपीय परिवार की मूल भाषा से केंतुम-वर्ग की ग्रीक, लैटिन, जर्मनिक आदि तथा सतम्-वर्ग की दरद, ईरानी और भारतीय आर्य भाषाएँ विकसित हुई। ईरानी के अंतर्गत मुख्यतः अवेस्ता, फारसी और पश्तो तथा भारतीय आर्य भाषाओं के कुल में संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी समूह की भाषाएँ उद्गत हुई। इनके अलावा भारत में, केंतुम वर्ग की जर्मनिक से विकसित अंग्रेज़ी तथा सतम् वर्ग की दरद से विकसित कश्मीरी भाषाएँ भी बोली जाती हैं।

भारत में आप्रवासी आर्यों के आगमन के साथ ही भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास भी आरंभ होता है। साढे-तीन, चार हज़ार वर्ष पूर्व विदेशी आर्य सप्तसिंधु (पंजाब) में आए और बाद में वहाँ से आकर मध्यदेश में बस गए। आर्यों से पूर्व यहाँ द्रविड़ रहते थे जो कि उस समय की भाषा संस्कृति और सभ्यता में, आगंतुक आर्यों से कम नहीं थे। मध्यदेश की नैसर्गिक शांति, सुंदरता और संपदा से प्रभावित होकर आर्य यहीं बस गए। द्रविड़ों ने दक्षिण की ओर रुख कर लिया और तत्कालीन आदिवासी जंगलों और कंदराओं में जा बसे।

विदेशी आर्यों के आने से कुछ फायदे भी हुए। जन-जागृति हुई, संघर्ष एवं प्रतिस्पर्धा से विकास के नए रास्ते खुले और भाषाओं का विकास हुआ। धीरे-धीरे वे लोग भारत भर में फैल गए। संपर्क एवं संभाषण की आवश्यकता के चलते उनकी अपनी तथा स्थानीय बोलियों के मेल से भारतीय बोलियों का विकास हुआ। उनके साथ भारतीय पर्यटक एवं प्रचारक भी रहे होंगे। इस तरह देश भर में सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं धार्मिक मान्यताओं में समानता आई। स्थानीय प्रभाव के साथ कई समानताएँ आज भी विद्यमान हैं। रूढ़िगत कठिन वैदिक भाषा के रूप धीरे-धीरे सरल होते गए। संस्कारित वैदिक से लौकिक संस्कृत का विकास हुआ। आगे चलकर संस्कृत से ही समस्त भारतीय आर्य भाषाओं का उद्‌गम हुआ। प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में वैदिक तथा लौकिक संस्कृत, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में पूर्वी व पश्चिमी हिंदी समूह की भाषाएँ, गुजराती, राजस्थानी, मराठी, बिहारी, असमी, उड़िया, सिंधी, पंजाबी, लहँदा तथा इनकी बोलियों का विकास हुआ। इनके अलावा नेपाली और सिंहली भी इसी क्रम में इसी काल की भाषाएँ हैं जो कि भारत के बाहर बोली जाती है। आज देश में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की कुल पाँच सौ सत्तर मातृभाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें बीस भाषाएँ प्रमुख हैं। संस्कृत के अलावा इस शाखा की चौदह भाषाओं को परिगणित भाषाओं का दर्जा प्राप्त है।

भारतीय आर्य भाषाओं की यात्रा, पंद्रह सौ ई.पू. प्राचीन वैदिक से आरंभ होती है। वैदिक एक जन भाषा थी, इसमें वेद रचे गए। कालांतर में वैदिक रूढ़ हो गई उसका नया साहित्यिक रूप लौकिक संस्कृत आया जो कि अधिक सरल और स्पष्ट था। संस्कृत के उपरांत पाँच सौ ई.पू. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का आरंभ पाली प्राकृत के नाम से हुआ जिसमें बौद्ध धर्म-मत का प्रचार हुआ। इसके बाद शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री, मागधी तथा अर्द्धमागधी प्राकृतों का विकास हुआ। मध्ययुग के अंतिम चरण में इन सभी प्राकृतों के अपभ्रंश रूप विकसित हुए जो कि शौरसेनी, अपभ्रंश, पैशाची अपभ्रंश, महाराष्ट्री अपभ्रंश, मागधी अपभ्रंश और अर्द्ध मागधी अपभ्रंश कहलाए। अपभ्रंश काल के बाद एक हजार ईसवीं से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का युग प्रारंभ होता है।

मध्यदेश की शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिंदी समूह, पहाड़ी समूह और गूजरी समूह की भाषाओं का विकास हुआ। पहाड़ी समूह में गढ़वाली, कुमायुँनी तथा गूजरी सममूह में गुजराती, राजस्थानी भाषाएँ विकसित हुईं। निमाड़ी का स्थान, पश्चिमी हिंदी समूह के अंतर्गत आता है। इस समूह की अन्य बोलियों में मालवी, खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, हरयाणवी तथा दक्खिनी आती हैं। आगे चलकर खड़ी बोली से परिनिष्ठित हिंदी और उर्दू विकसित हुई। परिनिष्ठित के साथ-साथ स्थानीय भाषाओं के मेलजोल से हिंदी का सरल रूप, राष्ट्रभाषा-हिंदी के रूप में तेजी से विकसित हो रहा है। परिनिष्ठित हिंदी ही साहित्यिक हिंदी है, जबकि राष्ट्रभाषा हिंदी देश की संपर्क भाषा बन पड़ी है। पश्चिमी हिंदी समूह की निमाड़ी मध्य प्रदेश के निमाड़ अंचल की स्वतंत्र एवं समृद्ध लोक भाषा है।

भारतीय आर्यभाषा परिवार में निमाड़ी का स्थान

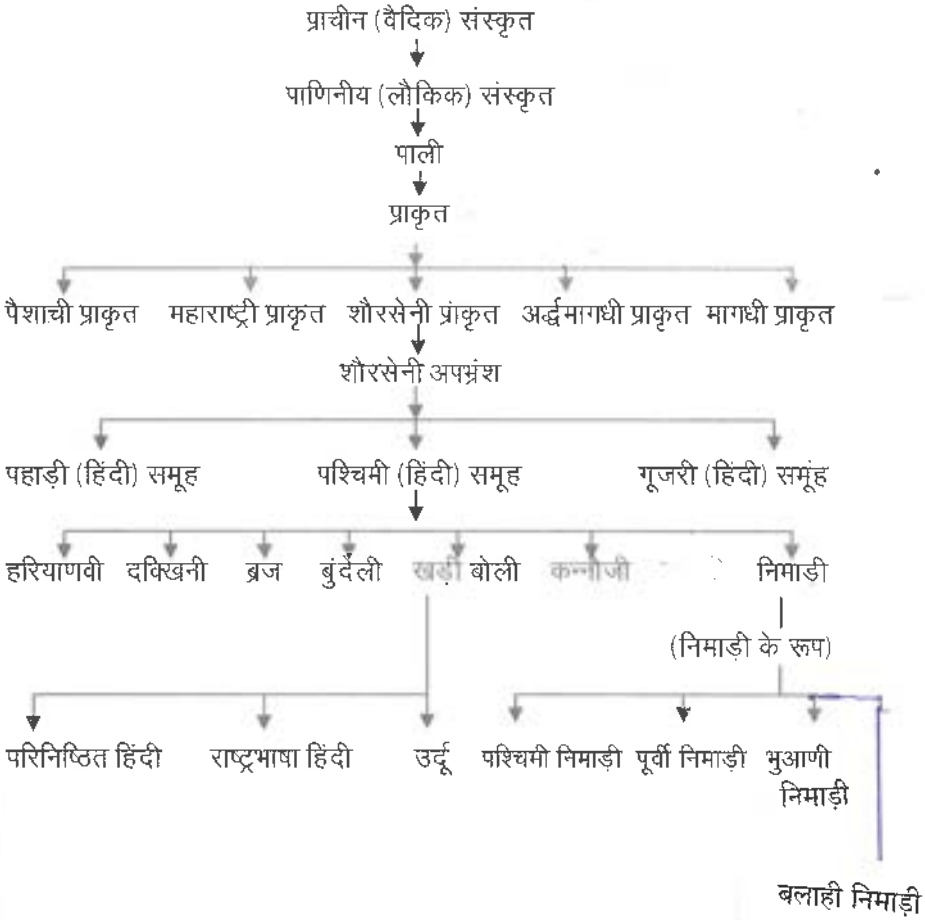

* * *

निमाड़ी का उद्‌भव एवं विकास

पूर्ववर्ती भाषा शास्त्रियों का यह मत कि भाषा की उत्पत्ति और उसके प्रारंभिक रूप की खोजबीन भाषाविज्ञान की परिधि में नहीं आती, हमें उचित नहीं जान पड़ता। जिस भाषा का अध्ययन करें, उसकी पूर्व-पीठिका को कैसे छोड़ दें। यह सही है कि प्राचीन भाषाओं के प्रारंभिक रूप की खोजखबर लेना इतना सरल नहीं है, किंतु प्रयत्न करने पर अनुमानित जानकारी तो जुटाई जा सकती है। निमाड़ी के उद्‌भव एवं प्रारंभिक मौखिक रूप के विषय में हमने यही किया है।

भाषाएँ उत्पन्न नहीं, उद्‌गत होकर विकसित होती हैं, नदियों की तरह। उनका बहाव मनुष्य की सार्थक वाणी से होता है।

निमाड़ी लोकभाषा पश्चिमी हिंदी समूह के अंतर्गत आती है। हिंदी की प्रारंभिक झलक बारहवीं शताब्दी के आसपास देखने को मिलती है। यही समय अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्‌गम का संक्रांतिकाल भी था। हिंदी ने अपने व्यापक अर्थ और बदलते रूप में, नागर अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी, खड़ी बोली से लेकर हिंदवी, हिंदुस्तानी, दक्खिनी, रेख्ता, प्रकारांतर से उर्दू तथा पश्चिमी एवं पूर्वी हिंदी समूह की भाषाओं से पल्लवित होते हुए परिनिष्ठित हिंदी व राष्ट्रभाषा तक की यात्रा पूरी की है। निमाड़ी सहित अन्य मध्यदेशीय लोकभाषाओं के उद्‌गम एवं विकास के सूत्र भी इसी धारा के समानांतर खोजे जा सकते हैं।

ललित निबंधकार डॉ.श्रीराम परिहार ने संत लालनाथगीर के भजनों के आधार पर निमाड़ी के रचित साहित्य का आरंभ पंद्रहवीं सदी के मध्य से माना है, जो कि उनके ग्रंथ, 'निमाड़ी साहित्य का इतिहास' में दर्ज है।

कोई भी भाषा उदित होते ही लेखनीय नहीं हो सकती। पहले वह वाणी से निस्सृत होती है, बोलते-बोलते बोली बनती है, एक समूह अथवा क्षेत्र में व्यवहृत होती है, फिर उसका वाचिक वाङ्‌मय आता है तब कहीं उसका लिखित रूप सामने आता है। इस प्रक्रिया में अनेक वर्ष लग जाते हैं।

निमाड़ी के मौखिक साहित्य की बात करें तो इसमें सर्वाधिक संख्या में पाए जानेवाले लोकगीत, शब्द-कौशल और भावाभिव्यंजना में विश्वस्तरीय हैं। जिन अनाम रचनाकारों ने इन्हें गढ़ा अथवा परिष्कृत किया होगा, उनके समय में भाषा का कोई रूप तो चलन में रहा होगा।

निमाड़ी का लिखित साहित्य पंद्रहवीं सदी से मिलता है जिसमें तत्कालीन प्रचलित संस्कृत के तत्सम तथा विदेशी अरबी-फारसी के शब्दों का समावेश है जबकि निमाड़ी के वाचिक साहित्य में ठेठ देशी शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसके अलावा लोक कथाओं में भूत-प्रेत, डायन, मायावी-राक्षस, ब्रह्मास्त्र, उड़न खटोले आदि विषयक कथानक भी भक्तिकाल के पूर्व के लगते हैं। साहित्य समाज का आईना होता है, रचनाएँ देशकाल और देशधर्म से अछूती कैसे रह सकती हैं। लगता है लोकभाषाओं का वाङ्मय उनके लिखित एवं उपलब्ध प्रमाणों के पूर्वऐतिहासिक कालीन होता है।

देश के विस्तृत भूभाग में, अनेक भाषाओं के वाचिक साहित्य में, मिलते-जुलते विषयों पर कथाओं और गीतों का पाया जाना भी संकेत करता है कि इन विभिन्न भाषाओं ने किसी एक ही भाषा-संस्कृति से नींव के पत्थर उठाए होंगे। विदित है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की सुबह, अपभ्रंश भाषाओं की संध्या के बाद हुई। हिंदी का प्रारंभिक काल ग्यारहवीं शताब्दी से शुरू होता है। हिंदी समूह की बोलियों ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने में कुछ समय लिया होगा। कंठ से कागज-कलम तक की यात्रा में सौ डेढ़-सौ साल का समय लगना स्वाभाविक है। पहले ही बताया जा चुका है पंद्रहवीं शताब्दी में निमाड़ी का प्रारंभिक लिखित साहित्य उपलब्ध हुआ है। कहा जा सकता है कि तेरहवीं शताब्दी के आसपास पश्चिमी हिंदी समूह की अन्य बोलियों के समानांतर, बोली के रूप में निमाड़ी का उदय हुआ तथा उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर सन् 1443 ई. में संत लालनाथगीर की निर्गुण भक्ति रचनाओं में उसके लिखित-रूप के दर्शन हुए।

विदेशी आर्यों के आप्रवासन के बाद वैदिक संस्कृत का विकास हुआ। उसके बाद लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाएँ विकसित हुईं। जब कोई भाषा परिमार्जित होकर साहित्यिक, पंडिताऊ अथवा व्याकरण सम्मत होती है, वह कालांतर में रूढ़ होकर जन-सामान्य से दूर होने लगती है। ऐसे में बोलचाल की नई बोलियाँ निकल आती हैं। इनमें से कुछ बोलियाँ, भाषा का रूप ले लेती हैं। संस्कृत, पाली,

प्राकृत तथा विभिन्न अपभ्रंशों के अधोगमन तथा लोकोपकारी हिंदी की बोलियों के उद्‌भेदन की यही कहानी है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल में विभिन्न अपभ्रंशों से पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, बिहारी, बंगाली, उड़िया आदि भाषाओं का विकास हुआ। इसी काल में पश्चिमी हिंदी-भाषा समूह में हरयाणवी, दक्खिनी, ब्रज, बुंदेली, खड़ी-बोली कन्नौजी और मालवी के साथ निमाड़ी भी विकसित हुई।

निमाड़ी का काल-क्रमिक विकास दो चरणों में समझा जा सकता है। प्रथम चरण निमाड़ी का पूर्व ऐतिहासिक काल, तेरहवीं शताब्दी के आसपास का, जिसमें निमाड़ी की वाणी का उद्‌गम तथा उसकी बोली का आरंभिक रूप समेटा जा सकता है। संभवतः इसी चरण में निमाड़ी के वाचिक साहित्य का शैशव काल भी रहा होगा। दूसरा चरण लिखित साहित्य का सन् 1443 से आरंभ होकर लगभग पाँच सौ वर्षों तक निर्गुणी संतों की भक्ति रचनाओं से आप्लावित रहा। विकास का यही दूसरा चरण निमाड़ी साहित्य के इतिहास का आदिकाल था। इसके बाद उन्नीसवीं सदी की अंतिम दशाब्दी से आधुनिक काल प्रारंभ होता है जो अभी तक चल रहा है।

निमाड़ी साहित्य के आदिकाल में भाषा कुछ सधुक्कड़ी तथा अव्यवस्थित थी। संस्कृत तथा अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग होता था, किंतु आधुनिक काल की रचनाओं में बीसवीं सदी के आरंभ से ही ठेठ देशी शब्दों के साथ निमाड़ी का शुद्ध रूप उभरने लगा। भाव, भाषा विषय एवं प्रस्तुति में निखार आने लगा। सूक्ष्म मानवीय संवेदनाओं से सामाजिक विसंगतियों को व्यक्त किया जाने लगा। निकटवर्ती बोलियों के प्रभाव के बीच निमाड़ी ने अपने आपको विकसित कर लिया। पश्चिमी हिंदी के रूपों को निमाड़ी ने अपनाया। पद्य परिमार्जित हुआ और गद्य की विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की जाने लगीं। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग समाप्त होने लगा। विलंबित 'अऽ' का प्रयोग बढ़ने से निमाड़ी का रूप निखरा। भाषा व्यवस्थित हुई। लोकसाहित्य पर गहन अध्ययन हुआ। साहित्य में कला, संस्कृति और लोक-चेतना की अभिव्यक्ति हुई। निमाड़ी साहित्य का इतिहास लिखा गया। शब्दकोश और व्याकरण की कमी पूरी हुई। साहित्य के अलावा भाषा की परिपक्वता को रेखांकित करते हुए निमाड़ी का प्रस्तुत भाषा-विज्ञान रचा गया। कुल मिलाकर निमाड़ी का आधुनिक काल, निमाड़ी साहित्य तथा निमाड़ी भाषा का स्वर्ण-युग कहा जाएगा।

* * *

निमाड़ी का स्वरूप

भारत का मध्यप्रदेश आरंभ से ही भाषायी आंदोलनों का प्रमुख केंद्र रहा है। यहाँ की शांति, संपदा और प्राकृतिक सुंदरता ने सदैव आप्रवासियों को आकर्षित किया है। इसी क्षेत्र में विंध्याचल, सतपुड़ा और नर्मदा के पावन सान्निध्य में निमाड़ अंचल अवस्थित है। शांति और शिवता की चाह लिए, भारत भूमि पर, कभी अभ्यागत पधारे, तो कभी सत्ता और संपत्ति की लालच में अभ्याक्रमी भी आ धमके। धीरे-धीरे यह देश आगंतुकों का उपनिवेश बन गया।

धार्मिक मान्यतानुसार सतयुग में यहाँ देवता और दानव आए। प्राग्वैदिक काल में निग्रिटो और आष्ट्रिक आए फिर वैदिक काल में विदेशी आर्य आए। इस वर्ग के आप्रवासियों के आगमन से देश का भला हुआ। सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव आया, व्यवस्था सुधरी, धार्मिक सांस्कृतिक और आर्थिक समृद्धि के साथ विश्व में भारत की पताका लहराने लगी। भारत की प्रगति देख पुनः विदेशियों की लार टपकने लगी। इस बार दूसरे वर्ग के आप्रवासी यहाँ आए। ये आततायी, देश को लूटने और सत्ता हड़पने की बदनीयती से आए। इनमें प्रमुख थे तुर्क, पठान, मुगल और अंग्रेज।

आप्रवासी जब भी समूह में आते हैं, अपने साथ अपनी संस्कृति और भाषाएँ भी लाते हैं। आगत और स्थानीय, संस्कृति तथा भाषाओं के आपसी मेलजोल से, संपर्क के साधन की आवश्यकतानुरूप नई संस्कृति एवं भाषाएँ विकसित होती है।

पूर्व वैदिक काल में भी इस भू-भाग में, जिसे आज हम निमाड़ अंचल कहते हैं, कोई तो भाषा रही होगी जो तत्कालीन आदिवासियों द्वारा प्रयोग में लाई जाती होगी। विदेशी आर्यों से बहुत पहले यहाँ आने वाले निग्रिटो, आष्ट्रिक और किरातों के आकर बसने से उनकी बोलियों के प्रभावस्वरूप इस क्षेत्र की आदिबोलियों का विकास हुआ। इसके बाद द्रविड़ आए। उत्तर भारत सहित मध्यदेश में, आज जहाँ मध्य प्रदेश है, द्रविड़ संस्कृति के अनेक केंद्र स्थापित हुए।

परवर्ती आर्यों के अधिकाधिक उपादान इसी द्रविड़ संस्कृति की देन है। तत्कालीन सवर्णों को इनके संस्कार विरासत में मिले। वहीं से चलकर उपनयन

संस्कार, पिंडदान संस्कार आदि निमाड़ के ब्राह्मणों में आए। संस्कारों के साथ शब्द भी यात्रा करते हैं।

निमाड़ी में पूर्वकालिक क्रियाओं का आधिक्य, संघर्षी व्यंजनों का लोप, संयुक्त व्यंजनों का विकास, स्वर भक्ति का बाहुल्य, संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग तथा परसर्गों के प्रयोग, प्राचीन ट-वर्गीय मूर्धन्य ध्वनियों का विकास एवं आधिक्य द्रविड़ से आर्य भाषाओं में बहकर आया है। आष्ट्रिक भाषाओं के कम्मळ, कपास, बाण तथा करातों के बल्ली, भालो, खोको और फेटो जैसे कई शब्द निमाड़ी में आए हैं।

विदेशी आर्य 1700 ई. पू. पंजाब के रास्ते भारत आए और मध्य प्रदेश में बस गए। उन्होंने यहाँ के जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया। इससे संस्कृति और भाषा सर्वाधिक प्रभावित हुई। नई भाषा-संस्कृति का विकास हुआ। वैदिक संस्कृति और संस्कृत-भाषा ने पूरे विश्व को प्रभावित किया। वैदिक संस्कृति से निमाड़ी तक की विकास-यात्रा के दौरान लगातार होते देशी-विदेशी आक्रमणों से पूरा देश उद्वेलित होता रहा।

ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक निमाड़ अंचल में देसी राजाओं का आधिपत्य था। सन् 1206 से 1526 तक दिल्ली सल्तनत में तुर्की और पख्तूनी शासकों की हुकूमत रही। इनके बाद मुगल आए। इन शासकों की तुर्की, फारसी और अरबी भाषाओं का प्रभाव, स्थानीय भाषाओं से होते हुए निमाड़ी पर पड़ा।

अपभ्रंश से हिंदी के विकास का आरंभिक काल 1000 ई. से 1500 ई. है। इस काल में अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ, हिंदी से अलग होने लगी थी और अपभ्रंश में हिंदी के नमूने झलकने लगे थे। हिंदी के आरंभिक काल के उत्तरार्ध में निमाड़ी का बीजारोपण हो चुका था। इस काल में निमाड़ अंचल में चौहान वंशी राजपूतों को हराकर फारूकी वंश के सुल्तान वर्षों तक गद्दीनशीन रहे। फिर कुछ समय तक खड़ेला के गोंड राजा ने राज संभाला। फिर बहादुरशाह आए। फिर मुगलों ने कमान संभाली। मुगलों से मराठों ने और मराठों से अंग्रेज़ों ने शासन की बागडोर हाथ में ली। इन शासकों की भाषाओं का प्रभाव निमाड़ी पर होना स्वाभाविक था। निमाड़ी में अरबी फारसी के अलावा मराठी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, पोर्तगीज आदि शब्दों का समावेश हो गया। साथ ही सीमावर्ती क्षेत्रों से सांस्कृतिक, व्यापारिक, आवागन के चलते गुजराती, मालवी, राजस्थानी, बंजारी, भीली, खानदेशी, बुंदेली ब्रज आदि भाषाओं के शब्दों को भी निमाड़ी ने पचा लिया।

पंद्रहवीं शताब्दी का समय निमाड़ी का शैशव काल था। प्रारंभिक निमाड़ी में संस्कृत के तत्सम तथा अर्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग होता था, जो हमें निर्गुण भक्ति धारा की रचनाओं में मिलता था। इसी काल में मध्यदेश में सधुक्कड़ी बोली का चलन था, अतः पश्चिमी के अलावा पूर्वी हिंदी के कुछ शब्द भी तत्कालीन निमाड़ी रचनाओं में मिलते हैं।

उच्चारण और व्याकरणिक दृष्टि से निमाड़ी, बुंदेली और ब्रज में कुछ समानताएँ हैं जबकि निमाड़ी और मालवी में साम्य अधिक है। इसके बावजूद इनकी अपनी-अपनी अलग पहचान है। ये लोक भाषाएँ पश्चिमी हिंदी की शाखाएँ हैं, जबकि राजस्थानी, शौरसेनी के गूजरी समूह की भाषा है। ठीक से भाषा वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हो पाने के कारण, भ्रमवश, कुछ विद्वानों ने निमाड़ी को परखने में भूल कर दी। डॉ.ग्रियर्सन ने निमाड़ी को राजस्थानी की बोली बताया जबकि डॉ.हरदेव बाहरी ने इसे बुंदेली का रूप समझा। इधर प्रो.दीपचंद, डॉ.कैलाश तिवारी तथा मालवी के कुछ विद्वानों ने निमाड़ी को मालवी की उपबोली कहा। परंतु तथ्य यह है कि निमाड़ी न तो राजस्थानी की बोली है और न ही मालवी की उपबोली। न तो यह बुंदेली का रूप है और न ही इसका संबंध पूर्वी हिंदी से है। निमाड़ी, शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित, पश्चिमी हिंदी समूह की एक स्वतंत्र लोकभाषा है।

* * *

निमाड़ी की सामान्य विशेषताएँ

1. निमाड़ी की विशेष ध्वनि विलंबित 'अऽ' का मात्राकाल ईषत् दीर्घ है। इस अयोगवाह वर्ण का वर्तनी चिह्न अंग्रेज़ी के एस (S) जैसा होता है। इसका प्रयोग अकारांत शब्दों के अंत्याक्षर के साथ किया जाता है। इससे अंतिम वर्ण के उच्चारण में विलंबित तान आ जाती है। (मखऽ--मुझे, निच्चऽ--नीचे, एकामऽ--इसमें)

2. वैदिक ध्वनि 'ळ' संस्कृत में लुप्त होकर पुनः पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से होते हुए निमाड़ी में आ गई। यह मूर्धन्य, अंतस्थ वर्ण 'ल' का विकसित रूप है। यह हिंदी में नहीं है। (माला--माळा, काजल--काजळ, काली--काळई)

3. पारंपरिक वर्ण ऋ ङ ञ श ष क्ष ज्ञ श्र तथा अयोगवाह विसर्ग (:) (कुल 9 ध्वनियाँ) निमाड़ी में निषिद्ध हैं।

4. पाली, प्राकृत में, उष्मों में केवल 'स' ध्वनि ही प्रयुक्त हुई है। यही परंपरा शौरसेनी अपभ्रंश से होते हुए निमाड़ी तक पहुँची है। जबकि वैदिक तथा लौकिक संस्कृत, द्वितीय तथा तृतीय प्राकृत और हिंदी में श ष स तीनों ध्वनियाँ हैं। निमाड़ी में श और ष के स्थान पर भी स का ही प्रयोग किया जाता है। (वर्षा--वरसा, शक्कर--सक्कर, ऋषि--रिसी)

5. मूर्धन्य ट-वर्गीय ध्वनियाँ ट ठ ड ढ द्रविड़ के प्रभाव से संस्कृत में तथा संस्कृत से पाली, प्राकृत, अपभ्रंश में होते हुए निमाड़ी तक पहुँची है।

6. अरबी, फारसी के प्रभाव से ड ढ ध्वनियाँ ड़ ढ़ में विकसित होकर अपभ्रंश से निमाड़ी में, धमाके से आ गई हैं।

7. प्राकृतों में णोण-सूत्र के अनुसार 'न' का विकास 'ण' में हो गया। निमाड़ी के अनेक क्रिया तथा संज्ञा शब्दों में 'न' वर्ण 'ण' में परिवर्तित हो जाता है। (पानी-पाणी, बहन-बईण, हँसना-हँसणो)

8. प्राकृत के ही णोन-सूत्रानुसार निमाड़ी में भी कुछ णकार शब्द नकार में बदल जाते हैं। (सवर्ण--सोन्नो, पूर्णिमा--पुन्योव, पुण्य--पुन)

9. पंचम वर्ण 'न' हिंदी के समान ही निमाड़ी में भी निषेधात्मक क्रिया-विशेषण है, परंतु जब इसमें विलंबित अऽ लग जाता है तो इस नऽ का प्रयोग, कर्ता कारक की

विभक्ति में, संयोजक बोधक शब्द बनाने में, पूर्व कालिक कृदंत में तथा बहुवचन प्रत्यय के रूप में किया जाता है।

(तुमनऽ आईनऽ मांडवा नऽ वरातीनऽ की सोभा बढ़ई दी-

तुमने आकर मंडप और बारातियों की शोभा बढ़ा दी।)

10. पारंपरिक ऋ का प्रयोग निमाड़ी के लेखन और उच्चारण में 'रि' की तरह होता है। (ऋषि--रिसी, ऋण--रिण, मृग--मिरग, कृषक--किरसाण) अन्य निषिद्ध वर्ण ज्ञ को ग्य, क्ष को छ, क्छ या ख श्री को सिरी तथा शृं को सिं के रूप में लिखा और बोला जाता है। (ज्ञान--ग्यान, अक्षर--अक्छर, श्रीराम--सिरीराम, शृंगार--सिंगार)

11. निमाड़ी में आसन्न भूतकाल और तात्कालिक वर्तमान काल की क्रिया, 'है' के स्थान पर 'छे' का प्रयोग होता है। इसके अलावा सामान्य वर्तमान काल की सहायक किया, 'है' के स्थान पर धातु में 'ज' प्रत्यय लगाया जाता है। (लिखा है--लिखेल छे, कौन है--कूण छे, लिखता है--लिखज, लिखवाता है--लिखाड़ज)

12. अनिश्चित कालीन वर्तमान काल की सहायक क्रिया 'है' के स्थान पर निमाड़ी में 'छे' का प्रयोग होता है। (व्हाँ कूण छे--वहाँ कौन है, ई गावड़ी का दुई वाछरू छे--इस गाय के दो बछड़े हैं।)

नोट-निमाड़ी में 'छे' का प्रयोग संभवतः गुजराती और राजस्थानी के प्रभाव से आया है, परंतु इसका प्रयोग गढ़वाली (छौ, छे), मैथिली (अछ, छी) और बंगाली (छि, छे) में भी दिखाई देता है।

13. अपभ्रंश की न्ह, म्ह, ण्ह, ल्ह, रह्, ळ्ह ध्वनियों का प्रयोग निमाड़ी में संयोग व्यंजन के रूप में होता है। इनके अलावा य्ह, व्ह, ह्य आदि ध्वनियाँ भी हैं। (न्हार-शेर, कोळ्हो--कुम्हड़ा, म्हारा--हमारा, तिव्हार--त्यौहार, ल्हयर--लहर, रह्यवास--निवास, काण्हो--काना, य्हाँ--यहाँ, व्हाँ--वहाँ, अह्यरो--चूल्हे का बाहरी भाग)

14. निमाड़ी में अल्पप्राण की जगह महाप्राण तथा महाप्राण की जगह अल्पप्राण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। (गेहूँ--घऊँ, पत्थर--फत्तर, बाँह--भाँव तथा सुख--सुक, साँझ--संजा, खंभा--खंबो)

15. निमाड़ी के कुछ शब्दों में निरनुनासिक ध्वनियाँ सानुनासिक उच्चरित होती हैं। (कब--कवँ, तब--तवँ, कई--कईं, अब--अवँ, जब--जवँ)

सहायक क्रिया 'ज' भुआणी-निमाड़ी में 'च' और आदिवासी (बलाही) प्रभावित निमाड़ी में 'त' हो जाती है – लिखी रह्याच; लिखी रह्यात।

16. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की तर्ज पर निमाड़ी के अनेक शब्दों में अनुनासिकता का लोप हो जाता है। (दाँत--दात, साँप--साप, आँच--आच, ओंठ--ओठ, ऊँट--ऊट)

17. आकारांत संज्ञा शब्द, निगाड़ी में ओकारांत हो जाते हैं। (घोड़ा--घोड़ो, बेचारा--बिचारो, सोना--सोन्नो)

18. कृपया नीचे देखें।

19. कुछ शब्दों में हकार का लोपीकरण होता है तथा कहीं-कहीं हकार का ह्रस्वीकरण हो जाता है। (बहन--बईण, ग्यारह--ग्यारा, कहना--कह्यणू, रहता--रह्यतो)

20. निमाड़ी में, कुछ शब्दों में 'ब' की जगह 'व' उच्चारित कर दिया जाता है। (बरसात-वरसात, बरात-वरात, बहू-वऊ, कब-कवँ)

21. पश्चिमी हिंदी की बोलियों में निमाड़ी तेज गति से बोली जाती है। नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीणों की और पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की बोलने की गति तीव्र होती है।

22. निश्चयात्मक रूप बनाने के लिए 'ज' अथवा 'ई' प्रत्यय लगाया जाता है। (बीचज--बीच में ही, उनखज--उनको ही तथा कसई-कैसे ही, भलई--भले ही)

23. निमाड़ी में सामान्य, पूर्ण तथा तात्कालिक वर्तमान काल की क्रियाएँ, ज प्रत्यय लगाकर बनाई जाती है। (देखज--देखता है, देख्योज--देखा है, देखी रह्योज--देख रहा है)

* * *

18. सामान्य भविष्यकाल द्योतक 'गा' प्रत्यय, केन्द्रीय निमाड़ी में, तीनों पुरुषों, दोनों वचनों तथा दोनों लिंगों में अपरिवर्तित रहता है; पश्चिमी क्षेत्र में,मध्य व अन्य पुरुष के दोनों वचनों तथा दोनों लिंगों में, 'गऽ' हो जाता है; जबकि भुआणा-क्षेत्र में, मध्य और अन्य पुरुष के एक वचन में 'गो' तथा स्त्रीलिंग में 'गी' हो जाता है।

बोली और भाषा

बोली और भाषा में अर्थगत भेद चाहे न हो, परंतु भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में इनकी अलग व्याख्या की जा सकती है। वैसे इनमें मात्र व्यावहारिक ही नहीं, तात्त्विक अंतर भी है।

बोली वह है, जो बोली जाती है, उच्चारित की जाती है, जिसमें वक्ता के विचार व्यक्त किए जाते हैं। इसका संबंध वचन और वाणी से है। चूँकि भाषा शास्त्र में हम मनुष्यों की भाषा की बात करते हैं। अतः मनुष्य के मुख-अवयवों से निस्सृत होने वाली सार्थक वाणी को हम भाषा कह सकते हैं।

भाषाशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत, भाषा और बोली के अर्थ यादृच्छिक हैं। शाब्दिक अर्थ में तो भाषा का मतलब भी वही है जो बोली का है। जो बोली जाए, वही तो भाषा है। शब्द कोशीय अर्थ में भेद केवल इतना ही है कि भाषा संस्कृत का शब्द है जबकि बोली हिंदी का। परंतु हम जानते हैं कि भाषा और बोली में स्पष्ट अंतर है।

अभी तक ऐसा मान लिया गया था कि आंचलिक जुबान को बोली और देश, प्रदेश की जुबान को भाषा कहा जाना चाहिए। इसके लिए कुछ आधार बिंदु भी निर्धारित किए गए। जैसे-बोली एक सीमित क्षेत्र की घरेलू बोलचाल की भाषा होती है जो कि, 30-40 कि.मी. लंबी-चौड़ी परिधि में बोली जाती है। इसका रूप स्थानीय होता है। यह अशिक्षित तथा निम्न सामाजिक स्तर के लोगों द्वारा बोली जाती है। इसका प्रयोग साहित्य में नहीं किया जाता, यह असाहित्यिक होती है। यह असाधु अथवा गंवारू होती है। इसके विपरीत भाषा परिनिष्ठित होती है। बड़े भू-भाग में बोली जाती है। इसमें साहित्य रचा जाता है यह विद्वानों और पंडितों के बीच व्यवहृत होती है, वगैरह।

परिवर्तन विकास लाता है और मान्यताएँ बदलती रहती हैं। हम जानते हैं कि गत अर्द्ध शताब्दी में जनसंख्या तेज़ी से बढ़ी और पहले के गाँव अब मोहल्ले से भी छोटे हो गए। किसी क्षेत्र की लंबाई-चौड़ाई के आधार पर बोली को तोलना उचित नहीं लगता। आज के युग में न तो बोली गंवार अनपढ़ों की वाणी रही और न ही भाषा, पंडितों की धरोहर। धर्म, व्यापार और राजनीति में बोली या भाषा को महत्व दिया जाना या न दिया जाना, संबंधित व्यक्तियों के व्यक्तिगत स्वार्थ पर निर्भर होने लगा है। आज

के संदर्भ में अधिकांश मानदंड अप्रासंगिक लगते हैं। परंपरा की फ्रेम में, यदि हमारी वर्तमान विकसित छवि, फिट नहीं बैठ रही है, तो छवि के हाथ-पैर काटने के बजाए, फ्रेम में बदलाव किया जाना चाहिए।

बोली के अंतर्गत हम अपनी वाणी के माध्यम से अपने विचार कहकर व्यक्त करते हैं, जिसे सुनकर समझा जाता है यदि इस प्रक्रिया में वक्ता का मंतव्य श्रोता की समझ में आ जाता है तो बोली का मूल उद्देश्य पूरा हुआ समझो। बोली एक क्षेत्र या समुदाय विशेष में बोली जाती है।

भाषा के लिए आवश्यक है कि जो सोचा समझा और बोला जाए वह लिखा भी जा सके, जिसे पढ़कर पाठक उसी मानसिकता से समझ सके जिस मानसिकता से लेखक ने सोचा और लिखा था। इस हिसाब से, "भाषा, बोली का वह सर्वदेशी और सर्वकालिक रूप है जो व्याकरणिक तत्वों के आधार पर उच्चारण, लेखन और पठन में एकरूपता लाता है।" भाषा की यह नवीन व्याख्या इशारा करती है कि जो कुछ आज और यहाँ भाषा के माध्यम से कहा या लिखा जाए उसे उसी समझ के साथ वर्षों बाद तथा मीलों दूर पढ़ा जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि भाषा का एक सुनिश्चित ढांचा हो, उसकी व्याकरणिक क्षमता हो। उसके उच्चारण और वर्तनी सुनिश्चित हो। उसकी अपनी भाषागत विशेषताएँ हों। उसका शब्दकोश हो जिसमें शब्दार्थों के अलावा शब्द भेदों को दर्शाते व्याकरणिक कोटि के संकेत हों। इन गुणों के चलते ही कोई बोली भाषा कहलाने की अधिकारिणी हो सकती है। जैसा कि निमाड़ी के साथ हुआ है।

बोलियों के अंतर्गत उपबोलियाँ भी हो सकती हैं, जो मुख्य या आदर्श बोली से थोड़ा-बहुत अंतर लिए हुए होती है। उपबोलियाँ अपेक्षाकृत कम विकसित होती हैं।

इसी प्रकार भाषा के भी दो प्रमुख रूप होते हैं। एक राष्ट्रभाषा, दूसरा लोकभाषा। राष्ट्रभाषा समूचे देश की सीमाओं तक बोली जाती हैं जबकि लोकभाषा किसी अंचल विशेष या समुदाय की भाषा होती है। लोकभाषा, लोक संस्कृति की संवाहिका होती है, वह देश, प्रांत अथवा अंचल के लोक जीवन, संस्कृति, धर्म अथवा परंपराओं को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। वह अपने अंचल की विकसित मातृभाषा होती है तथा उसमें प्रथम भाषा कहलाने की योग्यता रहती है। सरकारी कामकाज तथा औपचारिक उच्च शिक्षा को छोड़कर वह अपने अंचल के उन सभी क्षेत्रों में न्यूनाधिक रूप से व्यवहृत होती है, जैसी देश में राष्ट्रभाषा होती है।

राष्ट्रभाषा समूचे राष्ट्र की भाषा होती है। वह देश भर में अधिकतम लोगों के द्वारा लिखी, पढ़ी अथवा बोली और समझी जाती है। वह धर्म, व्यापार, शिक्षा, व्यवहार तथा साहित्य के अलावा राजनीति और मीडिया में, प्रमुखता से प्रयोग में लाई जाती है। भारत में राष्ट्रभाषा हिंदी के दो रूप विकसित हो रहे हैं। एक उसका परिनिष्ठित रूप है जो कि साहित्य तथा हिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रयोग में लाया जा रहा है, दूसरा उसका संपर्क भाषा का रूप है जो कि अपेक्षाकृत सरल है और स्थानीय भाषाओं से प्रभावित होकर जन व्यवहार में लाया जा रहा है।

भारत में लोक भाषाओं का गौरवशाली इतिहास रहा है। लोकभाषाएँ किसी पूर्ववर्ती समृद्ध भाषाओं अथवा बोलियों से विकसित होकर समकालिक राष्ट्रभाषा को पल्लवित करती है।

भाषा और बोली का संबंध और अंतर मात्र व्यावहारिक न होकर तात्त्विक भी है। अब हमें अपनी पारंपरिक सोच को बदलना चाहिए और इनका अध्ययन केवल समाज-भाषा विज्ञान के अंतर्गत न करके शुद्ध भाषा वैज्ञानिक स्तर पर करना चाहिए।

निमाड़ी में लोक भाषा के उपरोक्त सभी गुण विद्यमान हैं। यह मध्य प्रदेश के दक्षिण-पश्चिमी भू-भाग की समृद्ध लोकभाषा है। यह साहित्यिक है और जन-संपर्क में पूरी तरह सक्षम है। हमने इस ग्रंथ में निमाड़ी का मानक रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

* * *

लोकभाषा की जीवंतता

अध्ययन एवं अनुभव दर्शाता है कि सभ्यता के विकास की प्रक्रिया में जब किसी भाषा को मानक अथवा व्याकरण सम्मत बना दिया जाता है तो वह परिनिष्ठित तो हो जाती है पर उसका रूप स्थिर और प्राचीन हो जाता है। उसके विकास की गति धीमी पड़ जाती है। विकास अपरिहार्य है, परंतु भाषाओं का महत्वहीन होकर विलुप्त होना चिंता का विषय है। इसके अलावा एक और गैर पारंपरिक कारण, हमें लगता है-- भाषा की आर्थिक उपयोगिता। यह एक नए जमाने की आवश्यकता है। आज हर कोई उसी भाषा में औपचारिक शिक्षा लेना चाहता है जो उसे रोजी-रोटी दे सके। आज अहिंदी भाषी क्षेत्रों में, विरोध के बजाए, हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया जाना तथा देश में अंग्रेज़ी की ओर रुझान होना इस बात की ओर इशारा करता है कि आज का युवा क्षेत्रीय सीमाएँ लांघकर देश-विदेश में अपने पैर जमाना चाहता है।

एक पारंपरिक कारण और है जिसकी ओर ध्यान नहीं दिया गया है-- जनसंख्या का परिनिष्ठित तथा जनभाषा वर्गों में विभाजन। संस्कृत, अवेस्ता आदि उत्कृष्ट भाषाएँ परिनिष्ठित एवं दुरूह होकर पंडितों और पोथियों तक सीमित रही। जन अभिव्यक्ति का साधन तत्कालीन स्थानीय जनपदीय बोलियाँ बनी रही। आज संतोष इस बात को लेकर है कि देश में हिंदी के दो रूप, समानांतर चल रहे हैं। एक परिनिष्ठित हिंदी का, जिसमें उत्कृष्ट साहित्य रचा जा रहा है और जो औपचारिक शिक्षा का माध्यम है। दूसरा संपर्क-भाषा का जो क्षेत्रीय भाषाओं से प्रभावित होकर देश भर के विभिन्न जाति, धर्म एवं भाषा के लोगों को आपस में जोड़े हुए है। अब राष्ट्रभाषा-हिंदी, साहित्य, संपर्क तथा अनपढ़ से लेकर पंडितों तक की भाषा है।

वर्तमान स्थिति को स्वीकार करते हुए भविष्य में भाषाओं के अबाध विकास के लिए हमें लोकभाषाओं पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए। लोक भाषाएँ, लोक जन-जीवन से जुड़ी रहकर, राष्ट्रभाषा को पोषित करती हैं। राष्ट्रभाषा जहाँ व्यक्तित्व के लौकिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, वहीं लोकभाषा, उसकी सांस्कृतिक विरासत को बरकरार रखती है।

यह सच है कि बोलियों की पगडंड़ियाँ हमें गाँवों से शहर की सड़कों तक ले जाती हैं। फिर विकास की प्रक्रिया में भाषा की सड़कें शहर से गाँव तक पहुँचती हैं

परिणामस्वरूप बोलियों की पगडंड़ियाँ प्रायः मिटने लगती हैं। परंतु कुछ लोकभाषाओं की पगडंड़ियाँ गहरी और अमिट रहती हैं, जिनसे होते हुए ग्रामीण संस्कृति और समृद्धि शहरों तक पहुँच पाती है। किसी राष्ट्र की समृद्धि के लिए यह महत्वपूर्ण है।

निमाड़ी लोक भाषा स्वाभाविक रूप से विकसित हुई है। प्रस्तुत ग्रंथ में हमने, लेखन में शुद्धता और एकरूपता लाने के उद्देश्य से निमाड़ी के भाषिक तत्वों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। उच्चारण, वर्तनी और उसके स्वरूप को व्यवस्थित किया है। लोकभाषा को न तो जटिल नियमों में बाँधा है और न ही उसके लिए कड़े मानदंड निर्धारित किए हैं। आदर्श निमाड़ी के दर्शन अवश्य कराए हैं परंतु जहाँ मानक रूप की बात आई है, लचीला रवैया अपनाया गया है। व्याकरणिक त्रुटियों पर ध्यान अवश्य दिलाया गया है, परंतु प्रचलित रूपों को अस्वीकार नहीं किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ का हेतु निमाड़ी लोकभाषा को उसकी पहचान दिलाना है। निमाड़ी भाषियों को अपनी मातृभाषा की गरिमा से परिचित कराना है ताकि लोकभाषा के प्रति रुझान बना रहे। लेखकों और बुद्धिजीवि वर्ग को निमाड़ी के भाषा विज्ञान से अवगत कराना है। एक संदेश भी देना है, जब तक अभिव्यक्ति को सुगम्य बनाने के लिए अन्य भाषाओं के जनोपयोगी शब्दों को सविवेक इस्तेमाल करने की क्षमता बनी रहेगी, भाषा विकसित होती रहेगी, उसकी जीवंतता बनी रहेगी। इसके लिए व्यक्ति, समाज और शासन, तीनों स्तरों पर ईमानदारी से प्रयत्न करते रहना होगा। क्योंकि लोक भाषाएँ जीवित रहें गी तो संस्कृति भी जीवित रहेगी। संस्कृति के आधार से ही तो विकास की ऊँचाई सार्थक होती है।

* * *

ध्वनि और लिपि

आवाज से जीवन का आगाज होता है। प्रसूति कक्ष के बाहर नवजात शिशु की आवाज सुनने के लिए कान लगे होते हैं। रात्री की नीरवता को चीरकर पंछियों की चहकार सुबह की सूचना देती है। गाय का रंभाना, पपीहे की टेर, मनुष्यों का बतियाना आदि स्वाभाविक वाचिक क्रियाएँ हैं। जीवधारी प्रायः मुँह से ध्वनियाँ निकालते हैं। प्राणियों के अलावा निर्जीव वस्तुओं की भी आवाज़ें होती हैं, जैसे मेघों का गर्जन, झरनों का कलकल, रेलगाड़ी की छुक-छुक।

भाषाशास्त्र में हम केवल मनुष्यों की वाणी से उच्चरित ध्वनियों पर विचार करते हैं। इसमें भी मनुष्य की अनिश्चित क्रियाओं से उत्पन्न, हँसने-रोने, छींकने या खर्राटे भरने जैसी निरर्थक क्रियाओं की ध्वनियों को छोड़ देते हैं। उन सार्थक ध्वनियों पर अध्ययन को केंद्रित रखते हैं जिन्हें हम वाणी कहते हैं तथा जिसके द्वारा मनुष्य अपनी इच्छाओं, धारणाओं अथवा अनुभवों को व्यक्त करता है। वस्तुतः वाणी के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य भाषा का प्रयोग करता है। भाषा प्रोक्ति से और प्रोक्ति वाक्यों से संवरती है, वाक्य शब्दों से बनते हैं और शब्दों का आधार ध्वनि है।

ध्वनि की तरंगों पर तैरते शब्दों को सुना तो जा सकता है परंतु उन्हें संजोने के लिए भाषा का घर चाहिए। भाषा की उत्पत्ति तो मानव-जन्म के साथ ही हुई होगी। पहले वह सांकेतिक, फिर मौखिक रही होगी। वर्षों बाद जब अपने विचारों को भविष्य के लिए सुरक्षित रखने की बात सोची गई होगी तब भाषा को लिखने का प्रयत्न किया गया होगा। आरंभ में ध्वनि चिह्नों का प्रयोग किया गया होगा उसके बाद वर्ण और लिपि का विकास हुआ होगा। वर्ण जिस रूप में लिखे जाते हैं वह लिपि है। हिंदी आदि अधिकांश भारतीय आर्य भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं।

पश्चिमी हिंदी की अन्य बोलियों की तरह 'निमाड़ी' और उसकी बोलियाँ, देवनागरी में ही लिखी जाती हैं।

* * *

वर्ण और अक्षर

प्रायः वर्ण और अक्षर को एक दूसरे का पर्याय मान लिया जाता है, परंतु ऐसा नहीं है। इनमें अंतर है। ध्वनि उर्जा है। उर्जा कभी नष्ट नहीं होती, वह अक्षर (अ+क्षर) है। परंतु प्रत्येक ध्वनि अक्षर नहीं कहलाती। ध्वनि सार्थक भी होती है और निरर्थक भी।

भाषाविज्ञान में हम, मानव मुख-अवयवों से निकलने वाली सार्थक ध्वनियों को ही लेते हैं। भाषिक ध्वनि, भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है जिसका उच्चारण और श्रवण की दृष्टि से स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। इसी भाषिक ध्वनि के लिखित रूप को वर्ण कहा जाता है।

लिखित भाषा में उच्चरित ध्वनि को हमें किसी चिह्न द्वारा लिपिबद्ध करना होता है। मान लीजिए हमने किसी का ध्यान आकर्षित करने के लिए 'ए' कहा। अब इस मुँह से उच्चरित ध्वनि को कागज पर उकेरने हेतु इसका एक संकेत चिह्न (ए) गढ़ा। अब इस 'ए' की लिखावट को जो भी देखेगा, पढ़ेगा, समझेगा और बोलेगा, उसके मुख से वैसा ही उच्चारण निकलेगा जैसा कि लेखक या वक्ता ने सोचकर अभिव्यक्त किया था। इस दृष्टि से 'ए' के उच्चारण को भाषिक ध्वनि तथा इस ध्वनि को दर्शाने वाले चिह्न (ए) को हम वर्ण कहेंगे।

भाषिक ध्वनि या अक्षर बोले और सुने जाते हैं जबकि वर्ण लिखे, देखे और पढ़े जाते हैं। वस्तुतः वर्ण और अक्षर भाषिक ध्वनियों के रूप हैं।

अक्षर के वैसे तो कई अर्थ हैं-हरफ, वर्ण, चिह्न, स्वर, अक्षय आदि। परंतु भाषा आदि में, इसे अक्ष+र भाषा की धुरी में रमने वाला (अंग्रेजी के सिलेबल के पर्याय) के रूप में प्रयोग में लाते हैं।

अक्षर एक या अधिक ध्वनियों की वह इकाई है जिसका उच्चारण एक झटके में किया जाता है। और इसमें एक स्वर अवश्य होता है। इस हिसाब से-आ, जा, रे, जी, हऊँ, व्हाँ, ल्यो आदि अक्षर हैं। साथ ही पाणी शब्द में पा और णी, 'म्हारो' में म्हा और रो, गंगाळ में गं और गाळ तथा पुन्योव शब्द में पुन् और न्योव अक्षर हैं।

* * *

वर्तनी

सामान्यतः भाषा में अभिव्यक्ति के दो रूप होते हैं--मौखिक (उच्चरित), लिखित (वर्तनी)।

मौखिक भाषा उच्चारण की शुद्धता से परिष्कृत होती है जबकि लिखित भाषा वर्तनी की शुचिता एवं एकरूपता से प्रांजल होती है लिखने की रीति को वर्तनी कहते हैं।

वर्तनी को अक्षरी भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत किसी शब्द को लिखने के लिए ध्वनियों का क्रम निश्चित किया जाता है। उर्दू में इसे हिज्जे और अंग्रेज़ी में स्पेलिंग के नाम से जाना जाता है। वर्तनी का सीधा संबंध भाषागत ध्वनियों के उच्चारण से होता है। आज भाषाओं की निरंतर बदलती हुई परिस्थितियों में वर्तनी, मात्र शब्दों की मात्राओं तक ही सीमित नहीं है। इसमें रूप, प्रतीक, व्यक्ति या स्थान के नाम आदि का समावेश भी हो चुका है। इस ग्रंथ में, वर्तनी की विषय वस्तु में, संयुक्ताक्षरों, श्रुतिमूलक ध्वनियों, विभक्ति चिह्नों, निषिद्ध ध्वनियों, वर्णों, शब्दों तथा वाक्यों की अशुद्धियों, ध्वनियों के प्राणीकरण, संगम (विवृत्ति), अनुस्वार और अनुनासिकता आदि व्यावहारिक पक्षों के अध्ययन को सम्मिलित किया गया है।

बहुत पहले विद्वानों को लगता था कि हिंदी के विद्यार्थियों को हिज्जे या स्पेलिंग के समान शब्दों की वर्तनी रटने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि देवनागरी अन्य लिपियों से अधिक वैज्ञानिक है। इसमें जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा भी जा सकता है। यह काफी हद तक ठीक है परंतु पूरी तरह सही नहीं है। बीसवीं शताब्दी में हिंदी भाषा का रूप तेज़ी से बदला है। किसी शब्द को, किस प्रकार वर्णों में व्यक्त किया जाय, यह समस्या वर्तनी के मूल में चुभती रही है। व्याकरण से व्यवस्थित किए जाने के तीन सौ साल बाद बीसवीं सदी के छटे दशक में वर्तनी पर गंभीरता से व्यापक विचार-विमर्श शुरू हुआ, जो हाल के वर्षों तक जारी है। इस दिशा में कई दिग्गजों ने अपना जीवन खपा दिया। वर्तनी पर ग्रंथ लिखे गए। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने इस समस्या के निराकरण के लिए समितियाँ गठित की, जिनने मानकीकरण हेतु सिफारिशें पेश की। इनके अलावा नागरी प्रचारिणी सभा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारतीय हिंदी

परिषद, अखिल भारतीय हिंदी प्रकाशन संघ तथा कुछ विश्वविद्यालयों सहित कई विद्वानों ने वर्तनीकी एकरूपता संबंधी प्रयास किए हैं।

हिंदी तथा हिंदी परिवार की अनेक बोलियाँ देवनागरी में लिखी जाती है। इसमें सभी ध्वनियों को व्यक्त करने की क्षमता है। साथ ही एक ध्वनि को व्यक्त करने के लिए एक ही ध्वनि चिह्न है। फिर भी वर्तनी संबंधी अशुद्धियाँ होती रहती हैं।

निमाड़ी लोकभाषा भी देवनागरी में लिखी जाती है। ध्यातव्य है कि निमाड़ी में हिंदी की अपेक्षा वर्तनी की समस्या बहुत कम है। वैसे भी निमाड़ी में ऋ, श, ष, क्ष तथा ज्ञ वर्ण नहीं होने से इनसे जुड़ी वर्तनी की विशेष अशुद्धियाँ स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं।

* * *

निमाड़ी में वर्तनी की समस्या

सतही तौर पर ऐसा लगता है कि निमाड़ी ध्वनियों के उच्चारण और उनके लेखन में कुछ जटिलताएँ हैं। बहुत से वर्णों और शब्दों को ठीक से बोला नहीं जा पाता और जो बोला जाता है उसे ठीक से वैसा ही लिखा नहीं जाता। इसी ऊहापोह में बहुत से शहरवासी निमाड़ी लोग अपनी मातृभाषा को बोलने में हिचकिचाते हैं। वे लिखने में कठिनाई महसूस करते हैं। यह सोच सही नहीं है।

निमाड़ी की रह्, र्ह, ल्ह, नऽ, ण, ळ आदि ध्वनियों से निर्मित शब्दों ने और विशेष रूप से विलंबित 'अऽ' के प्रयोग ने प्रायः हर खासोआम को भ्रमित किया है। सामान्य पाठक से लेकर विद्वान लेखकों तक कभी-कभी असमंजस की स्थिति में आ जाते हैं। ऐसा लगता है कि बहुत से शब्दों पर हमारी गाड़ी अटक रही है, और समझ में नहीं आता कि कौन-सी वर्तनी सही है, कौन सी नहीं। उदाहरण के लिए चाँटा शब्द को निमाड़ी में कैसे लिखें--रैपट, र्हयपट, रयपट, रहेपट, रैय्यपट, ह्रयपट, लिखें या रह्यपट लिखें। इसी प्रकार 'उन्होंने' शब्द को किस प्रकार लिपिबद्ध किया जाय--उन्न, उन्नऽ, उनन, उन नऽ, उनऽन, उनऽनऽ, उन नन, उननन, उन्ननन लिखें या उननऽ लिखें। विलंबित अऽ का प्रयोग कहाँ और कैसे करें। ऐसे अनेक प्रश्न मस्तिष्क में कौंधने लगते हैं। लगने लगता है कि निमाड़ी में लिखना तो बहुत जटिल है। परंतु वास्तविकता यह है कि ऐसा कुछ नहीं है। यह सब पाले हुए भ्रम और सही जानकारी का अभाव है।

यहाँ पूर्ण विश्वास और प्रामाणिकता के साथ कहा जा सकता है कि ये समस्याएँ मृगतृष्णा मात्र हैं। ये वैसी जटिल नहीं है जैसी दिखाई देती हैं। गहराई से विचार करने, भाषा की प्रकृति और उसकी वर्तनी का सम्यक् अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि निमाड़ी एक प्रांजल भाषा है; सरल और स्पष्ट।

समृद्ध शब्द-संपदा से धन्य, निमाड़ी एक सुलझी हुई लोक भाषा है। इसमें वर्ण और वर्तनी से संबंधित कोई उल्लेखनीय समस्या नहीं है। इस ग्रंथ में सभी संभावित जिज्ञासाओं और समस्याओं का समाधान तलाशने का विनम्र प्रयास किया गया है।

* * *

निमाड़ी वर्णमाला

किसी भाषा का अध्ययन करना हो तो सर्वप्रथम उसकी ध्वनियों पर विचार करना होगा, क्योंकि उच्चरित ध्वनि संकेतों को जब लिपिबद्ध किया जाता है तो वे वर्णों का रूप ले लेते हैं। इन्हीं वर्णों के व्यवस्थित मेल से शब्द बनते हैं और शब्दों से वाक्य। वर्ण का सामान्य अर्थ एवं आकार भी होता है। प्रत्येक वर्ण ध्वनि है परंतु प्रत्येक ध्वनि वर्ण नहीं हो सकती।

वर्णों के व्यवस्थित रूप को वर्णमाला कहते हैं। निमाड़ी-वर्णमाला बहुत व्यवस्थित एवं स्पष्ट है। इसमें कुल 45 घटक ध्वनियाँ (वर्ण) हैं। इनमें 10 स्वर वर्ण, 2 अयोगवाह वर्ण तथा 33 व्यंजन वर्ण हैं।

व्यंजन वर्णों में द्विगुण व्यंजन ड़ और ढ़ भी शामिल है जिनको हमने ट-वर्ग की उक्षिप्त ध्वनियों के साथ रखा है। निमाड़ी के एकमात्र संयुक्त व्यंजन 'त्र' को भी वर्णमाला में स्थान दिया गया है। निमाड़ी की विशेष ध्वनि विलंबित अऽ को पारंपरिक अयोगवाह 'अं' के साथ रखा गया है।

निमाड़ी वर्णमाला का गठन इस प्रकार है-

स्वर-	अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ						
अयोगवाह-	अं अऽ						
व्यंजन-	क	ख	ग	घ			
	च	छ	ज	झ			
	ट	ठ	ड	ढ	ण	ड़	ढ़
	त	थ	द	ध	न		
	प	फ	ब	भ	म		
	य	र	ल	व	ळ		
	स	ह					
	त्र						

निमाड़ी में स्वर, व्यंजनादि वर्णों की संख्या को लेकर कोई भ्रम नहीं है।

निमाड़ी वर्णों का विवरण इस प्रकार है-

स्वर ध्वनियाँ

मूल स्वर-	अ	इ	उ		3
दीर्घ स्वर-	आ	ई	ऊ		3
संयुक्त स्वर-	ए	ऐ	ओ	औ	4
				स्वर -	10

अयोगवाह ध्वनियाँ

विलंबित-	ऽ (अऽ)	1
अनुस्वार-	i (अं)	1
	अयोगवाह -	2

व्यंजन ध्वनियाँ

क-वर्ग--	क	ख	ग	घ				4
च-वर्ग--	च	छ	ज	झ				4
ट-वर्ग--	ट	ठ	ड	ढ	ण	ड़	ढ़	7
त-वर्ग--	त	थ	द	ध	न			5
प-वर्ग--	प	फ	ब	भ	म			5
अंतस्थ व्यंजन--	य	र	ल	व	ळ			5
उष्म व्यंजन--	स	ह						2
संयुक्त व्यंजन--	त्र							1
							व्यंजन -	33

निमाड़ी में अनेक उपस्वन, संध्वनियाँ तथा संयुक्त ध्वनियाँ हैं जैसे-न्ह, म्ह, ल्ह, ळ्ह, ण्ह, र्ह, य्ह, व्ह, ळ्ळ, ट्ठ, ळ्य, ड्ड़ इत्यादि। इनमें न्ह और म्ह हिंदी की नवीन विकसित ध्वनियाँ हैं। बाकी ल्ह, ळ्ह प्राकृत से; ण्ह, र्ह (रह) अपभ्रंश से तथा य्ह, व्ह खड़ी बोली से होते हुए निमाड़ी में पहुँची है जबकि ळ्ळ, ट्ठ, ळ्य, ड्ड़, ट्य इत्यादि निमाड़ी में ही विकसित हुई हैं।

चूँकि सूक्ष्म प्रतिलेखन, सामान्य लेखन में प्रयुक्त नहीं होता है और संसार की कोई भी लिपि ध्वन्यात्मक लेखन के लिए उपयुक्त नहीं है, साथ ही इन ध्वनियों के स्वतंत्र चिह्न भी नहीं है। अतः इन्हें वर्णमाला में स्थान नहीं दिया जा सकता। अन्य सभी भाषाओं के समान ही निमाड़ी में भी परंपरागत प्रतिलेखन को अपनाया गया है।

ध्वन्यात्मक लेखन के अंतर्गत निमाड़ी में एकमात्र ध्वनि विलंबित अऽ को प्रभावी ढंग से चिह्नित किया गया है। और इसी कारण इसे वर्णमाला में स्थान भी दिया गया है।

* * *

निषिद्ध ध्वनियाँ

वैदिककाल से चली आ रही कुछ पारंपरिक ध्वनियों को आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं ने अपनी प्रकृति के अनुसार कहीं जोड़ा तो कहीं छोड़ा भी है। उष्म श, ष, स संस्कृत के बाद पाली में सिमिट कर 'स' रह गई प्राकृत में कहीं तीनों, तो कहीं एक ही रूप मिलता है। मागधी में 'श' तथा अर्द्ध मागधी में 'स' ध्वनि चली। अपभ्रंश में भी 'स' रही। हिंदी में तीनों आ गई परंतु निमाड़ी में पुनः सिमिट कर 'स' हो गई। इसी प्रकार ऋ की भी स्थिति है।

निमाड़ी ने परंपरागत ध्वनियों में से कुछ ध्वनियों को स्वीकार नहीं किया है। इनकी संख्या नौ है। निमाड़ी भाषा में निषिद्ध, ये ध्वनियाँ निम्नानुसार है-

मूल स्वर	:	ऋ
अयोगवाह विसर्ग	:	अः
नासिक्य व्यंजन	:	ङ, ञ
उष्म व्यंजन	:	श, ष
संयुक्त व्यंजन	:	क्ष, ज्ञ, श्र

बोलियों, लोक भाषाओं का उन्मुक्त व्यवहार ग्रामीण अंचलों में होता है। भोले भाले ग्रामीण जन अपने सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ लोक भाषा की आत्मा को भी संजोए रखते हैं। वे शब्दों को, तराशे गए रूपों की अपेक्षा, उनके मूल अथवा सरल रूप में बोलना पसंद करते हैं। अल्पज्ञान के अलावा मुख-सुख भी इसका एक कारण है। अन्य लोग परंपरा का निर्वाह करते हैं।

मध्य एवं उत्तर भारत के लोगों को 'ऋ' के स्थान पर 'रि' बोलना अधिक भाता है। वैसे भी 'ऋ' का मानक उच्चारण र्+इ=रि, उचित जान पड़ता है। हिंदी में भी यह वर्ण विलुप्त हो रहा है। निमाड़ी में ऋतु को रितु, कृपा को किरपा लिखा जाता है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे कृष्ण को किसन, गृह को घर, ऋण को रिण।

विसर्ग के लिए निमाड़ी में कोई स्थान नहीं है। वैसे भी संस्कृत के बाद से अपभ्रंश तक, इसका प्रयोग नहीं हुआ था। केवल मानक हिंदी में, संस्कृतनिष्ठ शब्दों में

ही इसका प्रयोग देखने में आता है। अब तो हिंदी में भी दुःख को दुख या दुक्ख तथा दुःशासन को दुशासन या दुस्सासन लिखा जाता है।

क-वर्ग और च-वर्ग के पंचमाक्षर 'ङ' और ञ का निमाड़ी में इसी रूप में प्रयोग कभी नहीं होता। इन वर्णों की नासिक्य ध्वनि के लिए, शब्दों में पूर्व वर्ण के ऊपर, अनुस्वार का प्रयोग, वर्तनी में किया जाता है। गङ्गा के स्थान पर गंगा, मञ्जन के स्थान पर मंजन लिखा जाता है।

संघर्षी तालव्य 'श' और संघर्षी मूर्धन्य 'ष' ध्वनियों का निमाड़ी में प्रयोग नहीं होता है; इनके स्थान पर दंत्य 'स' का प्रयोग किया जाता है। बंगाली और पहाड़ी में 'स' के स्थान पर 'श' बोला जाता है जबकि उड़िया और निमाड़ी में 'श' और 'ष' की जगह 'स' का प्रयोग किया जाता है।

हिंदी आदि के संयुक्ताक्षरों (क्ष त्र ज्ञ और श्र) में से तीन ध्वनियाँ (क्ष, ज्ञ, श्र) निमाड़ी में निषिद्ध है। हम जानते हैं कि--

क्ष = क् + ष

त्र = त् + र

ज्ञ = ज् + ञ

श्र = श् + र

चूँकि ष, ञ और श ध्वनियाँ निमाड़ी वर्णमाला माला में नहीं है, अतः इनके मेल से बननेवाले क्ष, ज्ञ और श्र संयुक्ताक्षर भी इस भाषा में नहीं है। एक मात्र संयुक्त वर्ण त्र (त् + र) का ही प्रयोग निमाड़ी में किया जाता है।

* * *

निमाड़ी वर्णों का वर्गीकरण

हम जानते हैं कि मुँह के विभिन्न अवयवों से वाणी निस्सृत होती है और ये अवयव ही वर्णों के उच्चारण स्थान हैं। इनमें कंठ, तालू, मूर्द्धा, दांत, होंठ और जीभ उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा जिह्वा की स्थिति, मुख और होंठों की आकृति, श्वासवायु का अवरोध, श्वासवायु की मात्रा तथा स्वरतंत्रियों के कंपन (नाद) इत्यादि के आधार पर, स्वर और व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है।

उच्चारण के आधार पर वर्णों का वर्गीकरण-

1. कंठ्य -- अ, आ, क, ख, ग, घ, ह
2. तालव्य -- इ, ई, च, छ, ज, झ, य
3. मूर्द्धन्य-- ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़, र, ळ
4. दंत्य-- त, थ, द, ध, न, ल, स
5. ओष्ठ्य-- उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म
6. कंठतालव्य-- ए, ऐ
7. कंठोष्ठ्य-- ओ, औ
8. दंतोष्ठ्य-- व

स्वर ध्वनियाँ - स्वर वे ध्वनियाँ हैं जो स्वतंत्र रीति से उच्चरित होती हैं और अधिक दूर तक सुनाई देती है तथा जिनके उच्चारण में वायुमार्ग में किसी भी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न नहीं होता। स्वर ध्वनियों की गूंज होती है। यह गूंज, मुख-विविर के स्वरूप तथा गुंजन की अवधि पर निर्भर करती है। इस दृष्टि से स्वरों का वर्गीकरण-निम्नांकित आधारों पर किया जाता है।

उत्पत्ति के आधार पर -

1) मूल स्वर (अ, इ, उ)
2) दीर्घ स्वर (आ ई ऊ)
3) संयुक्त स्वर (ए, ऐ, ओ, औ)

जिह्वा की स्थिति के आधार पर -

1) अग्र स्वर (इ, ई, ए, ऐ)
2) मध्य स्वर (अ)
3) पश्च स्वर (उ, ऊ, ओ, औ)

मुखाकृति के आधार पर -

1) संवृत स्वर (ई, ऊ)
2) अर्द्ध संवृत स्वर (ए, ओ)
3) अर्द्धविवृत स्वर (ऐ, औ)
4) विवृत स्वर (आ)

ओष्ठाकृति की स्थिति के आधार पर -

1) अवृत्ताकार (इ, ई, ए, ऐ)
2) सामान्य (अ)
3) वृत्ताकार (उ, ऊ, ओ, औ)

स्वर चतुर्भुज

स्वरों के उच्चारण में जिह्वा की स्थिति, मुख तथा ओठों की आकृति को निम्नांकित स्वर चतुर्भुज में दर्शाया गया है। निमाड़ी स्वरों का उच्चारण स्थान हिंदी स्वरों के समान ही है।

इस पारंपरिक स्वर चतुर्भुज में हमने निमाड़ी के आयोगवाह विलंबित अऽ के उच्चारण स्थान को परखने का प्रयत्न किया है। यद्यपि विलंबित अऽ का प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं होता है परंतु जब यह किसी अकारांत व्यंजन के साथ मिलकर आता है तो उच्चारण में ध्वनि की एक विशेष तान (ईषत् दीर्घ स्वर युक्त) उत्पन्न करता है। भाषा जगत को, निमाड़ी की विशेष ध्वनि के इस प्रयोग से अवगत कराने के उद्देश्य से हमने विलंबित अऽ को स्वर चतुर्भुज में चिह्नित किया है।

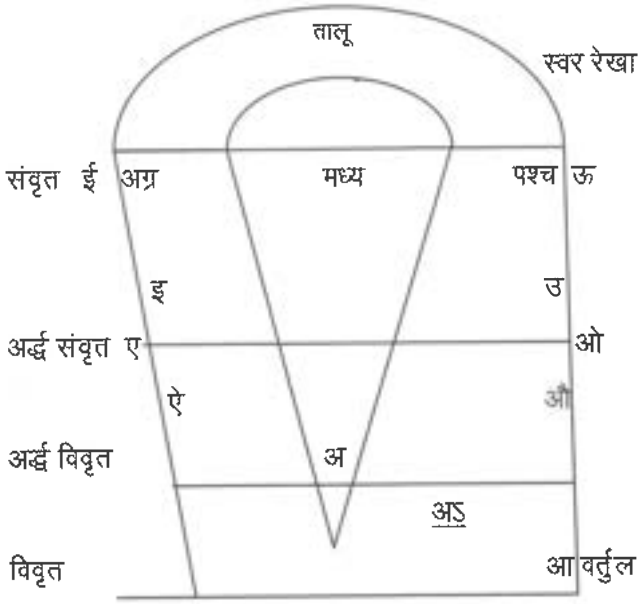

स्वर-चर्तुभुज

विलंबित अऽ का उच्चारण स्थान मूल स्वर अ तथा दीर्घ स्वर आ के मध्य है। अर्थात् यह संध्वनि जिह्वा के मध्य और मध्य-पश्च के बीच की है। स्थूल रूप से हम इसे अर्द्ध-विवृत, मध्य-पश्च ध्वनि कह सकते हैं।

व्यंजन ध्वनियाँ -

व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण, भाषण यंत्र (मुख विविर) के स्थान विशेष से होते हैं, जहाँ प्रश्वास को रोककर या अन्य प्रकार से विकृत करना पड़ता है। यह प्रयत्न होंठों से लेकर स्वर तंत्रियों तक किया जाता है। इस दृष्टि से व्यंजनों का वर्गीकरण निम्नानुसार है-

प्रश्वास वायु के अवरोध के आधार पर :

1. स्पर्श व्यंजन (क ख ग घ, ट ठ ड ढ, त थ द ध, प फ ब भ)
2. नासिक्य व्यंजन (ण न म)
3. स्पर्श-संघर्षी व्यंजन (च छ ज झ)
4. संघर्षी व्यंजन (स ह फ ज ख ग)
5. उत्क्षिप्त व्यंजन (ट ठ ड ढ ड़ ढ़)
6. अंतस्थ व्यंजन (य र ल ळ व)

प्रश्वास वायु की मात्रा के आधार पर :

1. अल्पप्राण (क ग च ज ट ड ण त द न प ब म ळ ड़)
2. महाप्राण (ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ स ह ढ़)

स्वर तंत्रियों (नाद) के आधार पर :

1. अघोष (श्वासमय) -- क ख च छ ट ठ त थ प फ स
2. घोष (नादमय) -- ग घ ज झ ड ढ ण द ध न ब भ म
   य र ल व ह तथा सभी स्वर

* * *

मात्राएँ एवं बारहखड़ी

ज्ञातव्य है कि व्यंजन स्वरों के सहारे बोले जाते हैं। व्यंजनों में जब स्वर मिलते हैं तो लेखन में उनकी आकृति, स्वरों की साधारण आकृति से भिन्न हो जाती है। व्यंजनों में शामिल स्वरों की इन्हीं आकृतियों को हम व्याकरण में मात्रा कहते हैं। इन्हें विशेष चिह्नों द्वारा व्यक्त किया जाता है जिन्हें मात्रा-चिह्न कहा जाता है।

निमाड़ी में भी हिंदी के समान ही वर्ण के ऊपर, नीचे, दाएँ तथा बाएँ मात्राएँ लगाई जाती हैं। इसमें स्वरों की ह्रस्वता, दीर्घता, अनुनासिकता आदि महत्वपूर्ण है। लेखन की शुद्धता के लिए उच्चारण की शुद्धता आवश्यक है। अभ्यास की कमी और जानकारी के अभाव में मात्रा संबंधी अनेक त्रुटियाँ हो जाती हैं। ह्रस्व, दीर्घ मात्राओं का ठीक स्थान पर, ठीक से प्रयोग किया जाना चाहिए अन्यथा अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती-

ह्रस्व (अ)-- नळई (गर्दन), कळई (कली)
दीर्घ (आ)-- नाळई (नाली), काळई (काली)

निमाड़ी में दस स्वर हैं। हिंदी का ऋ स्वर निमाड़ी में नहीं है। इसका स्वतंत्र तथा मात्रा के रूप में केवल संस्कृत के शब्दों में ही प्रयोग होता है। हिंदी में यह लिखित रूप में अवशिष्ट है। उच्चारण में यह 'रि' है। हिंदी अथवा निमाड़ी में भी इसे मात्रा लगाने वाले स्वरों में शामिल नहीं किया जाता। परिणामस्वरूप हिंदी और निमाड़ी की बारह खड़ी में दस स्वरों को ही लिया जाता है जिनमें ऋ का स्थान नहीं है।

व्यंजनों के उच्चारण में स्वरों के अलावा अयोगवाह ध्वनियों का योगदान भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। इन अयोगवाह ध्वनियों के बिना, भाषा का महल खड़ा नहीं किया जा सकता। इनकी मात्राएँ भी स्वरों की भांति, व्यंजनों में लगाई जाती है। निमाड़ी और हिंदी दोनों भाषाओं में अयोगवाही ध्वनियों की संख्या दो-दो है। दस स्वर और दो अयोगवाह मिलाकर बारह मात्राएँ, व्यंजनों में लगाई जाती है; इसी कारण व्यंजनों की समात्रिक व्यवस्था बारहखड़ी कहलाती है।

निमाड़ी और हिंदी की बारहखड़ी में थोड़ा-सा अंतर है। हिंदी में अनुस्वार (अं) तथा विसर्ग (अः) अयोगवाही ध्वनियाँ हैं, जबकि निमाड़ी में अनुस्वार (अं) तथा विलंबित (अऽ) हैं। बाकी के दस स्वर दोनों में समान हैं।

दस स्वरों और अनुस्वार एवं विलंबित सहित निमाड़ी व्यंजनों के जो बारह आकार बनते हैं, उसे बारह खड़ी कहते हैं।

निमाड़ी की बारहखड़ी इस प्रकार है-

स्वरादि --	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अऽ
चिह्न --		ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ	ं	ऽ
मात्राएँ --	क	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	कं	कऽ

हम जानते हैं कि स्वर 'अ' की कोई मात्रा नहीं होती है। यह जब व्यंजन में मिलता है तो उसे पूर्णता प्रदान करता है। क् (शुद्ध व्यंजन) + अ (ह्रस्व स्वर) = क (स्वर युक्त व्यंजन) इस प्रकार अ स्वर मिलने से व्यंजन का हलंत चिह्न हट जाता है जबकि अन्य स्वर मिलने से मात्राएँ लगानी पड़ती हैं।

घटक (स्वर/व्यंजन)	स्वर	मात्रचिह्न	शब्द (अर्थ)
स् + य + आ + क् + अ	आ, अ	ा	स्याक (तरकारी)
ग् + ओ + द् + अ + ड् +ई	ओ, अ, ई	ो,ी	गोदड़ी (कथरी)
प् + उ + न् +य् + ओ+ व् +अ	उ, ओ, अ	ु,ो	पुन्योव (पूर्णिमा)

* * *

निमाड़ी स्वर ध्वनियाँ

स्वर उन ध्वनियों को कहते हैं जो स्वयं उच्चरित होती हैं। इनका उच्चारण बिना किसी अवरोध या विघ्न बाधा के हो जाता है। ये स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं। इनको बोलने में किसी दूसरे वर्ण की आवश्यकता नहीं पड़ती। भीतर से आती हुई वायु, मुख से निर्बाध रूप से निकलती है। स्वरों के उच्चारण में जिह्वा की स्थिति, मुख तथा होंठों की आकृति, महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मूल स्वर -

निमाड़ी में मूल स्वर तीन हैं-अ, इ, उ। ये तीनों ह्रस्व तथा स्वतंत्र स्वर हैं। इनकी उत्पत्ति दूसरे स्वरों से नहीं होती। इनके उच्चारण में इकाई समय लगता है अतः ये एक मात्रिक कहलाते हैं।

अ - मूल स्वर अ एक अर्द्ध विवृत मध्य स्वर है। इसके उच्चारण में जिह्वा का मध्य भाग कुछ ऊपर उठ जाता है और होंठ भी कुछ खुल जाते हैं। यह कंठ्य ध्वनि है जिसका समावेश अधिकांश व्यंजनों में होता है। जैसे-

अतर (इत्र), अक्काड़ी (माचिस), अमलाणो (इमली का पना)

इ - मूल स्वर इ का उच्चारण जिह्वा के अग्रभाग से होता है। इसमें होंठों की स्थिति वृत्ताकार होती है। यह संवृत अग्र स्वर है। इसकी ध्वनि तालव्य है। इसका प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अंत में होता है-

इसमरो (छिपकली), बइल (बैल), गाळइ-गाली

उ - यह मूल स्वर संवृत पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग ऊपर उठ जाता है। मुँह कम खुलता है। इसकी ध्वनि होष्ठ्य है। इसमें होंठ कुछ वर्तुल हो जाते हैं। इसका प्रयोग आदि, मध्य और अंत में होता है-

उघाड़ी (अनावृत), मउड़ (मुकुट) वउ (बहू)

दीर्घ स्वर -

दीर्घ स्वर तीन हैं-आ, ई, ऊ। इनकी उत्पत्ति मूल स्वर में उसी मूल स्वर को मिलाने से होती है-

अ + अ = आ। इ + इ = ई। उ + उ = ऊ। चूँकि इन स्वरों के उच्चारण में स्वरों के उच्चारण से दुगुना समय लगता है अतः इन्हें दीर्घ अथवा द्विमात्रिक स्वर कहा जाता है।

आ - यह एक विवृत दीर्घ स्वर है। इसका उच्चारण जीभ के पश्च और मध्य भाग के बीच रहता है। मुँह तथा होंठ अधिक खुलते हैं। इसकी ध्वनि कंठ्य है। इसका प्रयोग शब्द के आदि मध्य और अंत में होता है-

आग्या (जुगनू), पुआळ (एक प्रकार की घास), मालपूआ (निमाड़ी मिष्ठान्न)

ई - दीर्घ ई, संवृत अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में मुँह कम खुलता है और जीभ का अग्र भाग ऊपर उठकर तालू के बहुत निकट पहुँच जाता है। होंठों की आकृति वृत्ताकार होती है। इसकी ध्वनि तालव्य है। इस स्वर का प्रयोग आदि मध्य और अंत में होता है- ईच (मध्य), बईण (बहन), एड़ई (मुंदबुद्धि-स्त्री)

ऊ - यह स्वर, संवृत पश्च दीर्घ है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग अधिक ऊपर उठकर कोमल तालू के निकट पहुँच जाता है। इसकी ध्वनि ओष्ठ्य होती है। हिंदी का दीर्घ (ऊ) निमाड़ी में ह्रस्व हो जाता है (ऊँचा-उच्चा, ऊपर-उप्पर) निमाड़ी में इसकी मात्राओं का प्रयोग तो होता है परंतु इसके स्वतंत्र स्वर रूप के उदाहरण अत्यल्प हैं- ऊट (ऊँट), गऊर (सखी)

संयुक्त स्वर -

निमाड़ी भाषा के लिए यह विशेष बात है कि संयुक्त स्वर ए, ऐ, ओ, औ के सर्वाधिक रूप भारत की आर्य भाषाओं के अंतर्गत निमाड़ी में पाए जाते हैं (यात्रा सारणी देखें)।

संयुक्त स्वर अथवा संध्यक्षर, दो स्वरों के संयुक्त रूप को कहते हैं। ये रूप मिलकर एक हो जाते हैं। संयुक्त स्वरों के उच्चारण में जीभ एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्रता से जाती है, इसी दौरान उच्चारण हो जाता है। दोनों स्वर मिलकर एक अक्षर का निर्माण करते हैं। (आ+इ = ऐ, आ+उ=औ)

निमाड़ी के संयुक्त स्वर दीर्घ स्वरों की श्रेणी में आते हैं और द्विमात्रिक कहलाते हैं। इनकी यात्रा बड़ी दिलचस्प है। भारोपीय परिवार के केंतुम तथा सतम् वर्ग की अनेक भाषाओं में इनकी उपस्थिति मिलती है। केंतुम वर्ग की ग्रीक भाषा में इन ध्वनियों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है जो कि सतम् वर्ग की भारत-ईरानी शाखा के

अंतर्गत, भारतीय आर्य भाषा कुल में निमाड़ी भाषा की इन सर्वाधिक ध्वनियों से मेल खाती है।

इनके उच्चारण एवं वर्तनी में प्राचीन काल से, विभिन्न भाषाओं में, अब तक कई बार परिवर्तन हुए हैं। अलग-अलग भाषाओं ने इन ध्वनियों को अपनी प्रकृति के अनुसार अलग-अलग रूप में अपनाया है। इन चार संयुक्त स्वरों में ए और ओ स्वतंत्र ध्वनि के साथ बने रहे जबकि ऐ और औ वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में तो संयोग स्वरों के रूप में रहे परंतु पाली, प्राकृतों तथा संस्कृत में लुप्त हो गए और उसके बाद आधुनिक भारतीय आर्य भाषा परिवार की हिंदी में, नए रूप में पुनः स्वतंत्र ध्वनि में आ गए। निमाड़ी ने इन चारों संयुक्त स्वरों के आंरभ से लेकर अब तक के सभी रूपों को अपनी प्रकृति के अनुसार आत्मसात कर लिया है।

ए और ऐ -

इन्हें कंठ और तालू के सहयोग से बोला जाता है। ये दोनों कंठ तालव्य स्वर हैं। इनके उच्चारण में जीभ आगे बढ़ी होती है और उसका मध्य भाग ऊपर उठा रहता है। होंठ थोड़े से फैले हुए रहते हैं। इनका प्रयोग अन्य स्वरों की भांति स्वतंत्र-ध्वनि तथा मात्रा के रूप में होता है।

'ए' - अर्द्ध संवृत स्वर है। इसके संबंध में विचारणीय तथ्य यह है कि इसका उच्चारण लघु तथा दीर्घ दोनों ही रूपों में होता है। लघु स्वर के रूप में उच्चारण करते समय वक्ता को झटके के साथ में आगामी स्वर का उच्चारण करना पड़ता है-

एक्कल कोड़ो (अमिलनशील), एक्सरी (इकहरी), एतरोज (इतना ही), दीर्घ स्वर के रूप में उच्चारण करते समय 'ए' पर कुछ अधिक समय तक रुकना पड़ता है-

एड़्यो (मंदबुद्धि), एल्हा (कष्ट), एपर (इस पर)

'ऐ' - अर्द्ध विवृत स्वर है। अन्य स्वरों की भांति इसका प्रयोग स्वतंत्र ध्वनि के अलावा मात्रा के रूप में भी होता है। वैदिक संस्कृत में इसका उच्चारण आ+इ, लौकिक संस्कृत में अ+इ पाली, प्राकृत, अपभ्रंश में लुप्त, हिंदी की बोलियों में ऐ, अ+ए, अ+य रूप मिलते हैं। निमाड़ी में इन सभी रूपों का प्रयोग होता है। जब दो स्वरों का एक ही श्वासाघात में उच्चारण किया जाता है तो संयुक्त स्वरों की स्वर-ध्वनियाँ एकाक्षर में परिणित हो जाती हैं। ये स्वतंत्र, एकाक्षरी स्वर-ध्वनियाँ, संधिस्वर कहलाती हैं। निमाड़ी के 'ऐ' में अ+ए की स्वर संधि है। यहाँ ऐ का उच्चारण अय् की भांति एक ही स्वाराघात में होता है-

बैड़ी (बय्-डी) = टेकरी, सैड़्यो (सय्-ड़्यो) = गिरगिट, पैलऽ-(पय्-लऽ) = पहले।

दूसरी स्थिति में, यदि संयुक्त स्वर में आने वाली दोनों ध्वनियाँ अपनी-अपनी सत्ता बनाए रखती हों और दोनों का उच्चारण एक ही श्वास में न हो पाता हो, तो दोनों के मध्य उच्चारण में एक विराम की स्थिति आ जाती है। उनका उच्चारण अलग-अलग श्वासाघातों में होता है। स्वरों का यह रूप, संयोग-स्वर कहलाता है। निमाड़ी के 'ऐ' में, अ+इ, अ+ई, अ+य ध्वनियों का स्वर संयोग भी है-

अ+इ : भइसी (भैंस), बईल (बैल), साळइ (साली)

अ+ई : भोजई (भौजाई), बुटई (गिलहरी), चिड़ई (चिड़िया)

अ+य : पयड़ी (सीढ़ी), बयरो (पत्नी), घयड़ो (रगड़)

'ओ' और 'औ' -

संयुक्त स्वर ओ और औ का उच्चारण स्थान कंठोष्ठ्य है। इन्हें जीभ के नीचे, पीछे और होंठों से उच्चरित किया जाता है। इनके उच्चारण में मुँह गोलाकार रूप धारण कर लेता है। दोनों ध्वनियों में समानता है, परंतु अंतर भी है। वैसे तो दोनों स्वर हैं परंतु 'औ' की हमें दो ध्वनियाँ सुनाई देती हैं, संधि तथा संयोग स्वर के रूप में। ये स्वर भी अन्य स्वरों की भांति स्वतंत्र तथा मात्रा के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

(क) 'ओ' का स्वतंत्र रूप - यह दीर्घ, वर्तुलित, पश्च, अर्द्ध संवृत स्वर है। 'ए' की तरह 'ओ' का भी कोई ह्रस्व समरूप नहीं होता। इसका प्रयोग आदि, अध्य और अंत में किया जाता है-

टोंगळ्यो (घुटना), रमझोळ (पायल), मकोड़ो (च्यूँटा)

(ख) 'औ' के रूप - निमाड़ी में औ के सर्वाधिक रूप मिलते हैं। यद्यपि यह एक संयुक्त स्वर है, परंतु कहीं-कहीं इसकी स्वतंत्र ध्वनि, मूल-स्वर जैसा आभास भी देती है। ऐसा लगता है जैसे उच्चारण में जीभ एक स्थान पर अचल रहती है, विशेष रूप से तब, जब अ+ओ = औ ध्वनि आती हो। अधिकांश शब्दों में यह ध्वनि, संधि-स्वर के रूप में सुनाई देती है जिसमें प्रायः 'अ+उ' ध्वनियों का स्वर-संयोग मिलता है ऐसे शब्द निमाड़ी के अपने देसी रंग में रंगे हुए हैं। इन संधि (स्वतंत्र) तथ संयोग स्वरों के उच्चारण में जीभ सरकती है। इन्हें एक ही श्वासाघात में नहीं बोला जा सकता। रुकने की अवधि भी संधि स्वर की अपेक्षा स्वर संयोग में अधिक होती है।

(1) स्वतंत्र स्वर (औ=अ+औ की ध्वनि)--औखो (पूरा), घड़ौची (बिस्तर रखने की चौघड़ियाँ), चौपुड़ई (चार तहवाली), बौड़ाणू (लौटाना), फौरी (हल्की)

(2) संधिस्वर (औ अ-व की ध्वनि)--धौळो (सफेद), औटळ (अटकन, निषिद्ध), मौसर (आनंदोत्सव), सौळ्यो (रंगीन रेशमी धोती)
औ = अ-उ की ध्वनि--गौरी (सखी), कौळ (ग्रास), चौदा (चौदह)
कौवो (कौआ), कौळो (दरवाजे से लगी दीवार का हिस्सा)

(3) संयोग स्वर (अ - व)--मवरयो (बौरना), कवड़ी (कदर्पिका), कवलू (खपरेल), गवळई (ग्वाला)
(अउ=औ) गउर=गौर (सहचरी), मउत=मौत (मृत्यु), चउत=चौत (चतुर्थी), सउड़ = सौड़ (जापा-प्रबंधन)

संयुक्त स्वरों (ए, ऐ, ओ, औ) की यात्रा-सारणी

संयुक्त स्वर ध्वनियों की यात्रा बड़ी दिलचस्प है। ए, ऐ,ओ, औ ध्वनियाँ भारोपीय परिवार की ग्रीक से भारत-ईरानी परिवार की अवेस्ता तक तथा भारतीय आर्य भाषाओं-वैदिकी, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, निमाड़ी आदि भाषाओं तक, हज़ारों वर्षों की लंबी यात्रा करके आई है। इस लंबी यात्रा में इनके जितने भी रूप बने, वे सभी रूप एक साथ हमें निमाड़ी में मिलते हैं-

मूल स्वर	भारोपीय (ग्रीक)	वैदिक	लौकिक संस्कृत	पाली/ प्राकृत	अपभ्रंश	हिंदी	निमाड़ी
ए	अई, ओ	अइ	ए	ऍ, ए	ऍ, ए	ए	ए (ह्रस्व) स्वतंत्र ए (दीर्घ) स्वतंत्र
ऐ	अइ, एइ, ओइ	आइ	अइ	(लुप्त)	(लुप्त)	ऐ	ऐ (अए) संधि अइ (अ+इ) संयोग अई (अ+ई) संयोग अय (अ+य) संयोग
ओ	अउ, ऍउ, ओउ	अउ	ओ	ऑ, ओ	ऑ, ओ	ओ	ओ स्वतंत्र
औ	आउ, एउ, ओउ	आउ	अउ	(लुप्त)	(लुप्त)	औ	औ (अओ) संधि अव (अ+व) संयोग अउ (अ+उ) संयोग

* * *

अयोगवाह : बिन फेरे हम तेरे

बिना शादी किए साथ-साथ रहनेवाली नए जमाने की (लिव-इन-रिलेशनशिप) फैशन, भले ही नई रीत हो लेकिन हमारी भाषाओं की ध्वनियों में ऐसी परंपरा सदियों से चली आ रही है।

हम जानते हैं कि स्वर ध्वनियाँ जब मूल व्यंजन ध्वनियों से मिलकर 'दो जिस्म एक जान' हो जाती हैं तो पूर्ण व्यंजन-वर्णों तथा अक्षरों का जन्म होता है--डोकरी (बुढ़िया) शब्द में ड्-क्-र् व्यंजन क्रमशः ओ-अ-ई स्वरों से इस तरह एकमेक हो गए हैं कि डो-क-री अक्षरों में स्वरों ने अपनी चित्राकृति का अपनापन खो दिया है। वे व्यंजनों में आत्मसात हो गए हैं। यहाँ तक तो स्वरों-व्यंजनों के आदर्श विवाह की बात समझ में आती है। परंतु कुछ वर्ण अथवा अक्षर ऐसे भी हैं जिनके घटक स्वर-व्यंजन साथ-साथ तो रहते हैं, मिलकर नए वर्ण रूपों को जन्म भी देते हैं, परंतु ऐकात्म्य नहीं करते, याने 'बिन फेरे हम तेरे'। ये सहकार तो करते हैं लेकिन अलग-अलग अस्तित्व बनाए रखते हैं। जैसे--बंदरी शब्द में 'ब' के साथ 'अनुस्वार' का संबंध है परंतु दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व है। अर्थात् 'अ-योग-वाह', योग न करते हुए जिसे वहन किया जाए ऐसी ध्वनियाँ, अयोगवाह कहलाती हैं।

निमाड़ी लोकभाषा में अयोगवाह ध्वनियाँ हैं--अनुस्वार (ं) और विलंबित अ (अऽ)।

अनुस्वार --	अंगो (अँगरखा, गंगाळ (ताम्र-कंडाल),
	उखंडो (बिना बिस्तर की खटिया), डळंगो (अटकन)
विलंबित अऽ--	मखऽ (मुझे), पाछऽ (पीछे), वाटऽ (के लिए),
	राखऽ (रखे), भणनऽ (पढ़ने) हमनऽ (हमने)

हिंदी में भी अयोगवाह ध्वनियों की संख्या दो ही है। एक अनुस्वार, दूसरी विसर्ग। निमाड़ी में विसर्ग का प्रयोग नहीं किया जाता जबकि हिंदी में विलंबित अऽ नहीं होता।

दोनों अयोगवाह, विलंबित अऽ तथा अनुस्वार, निमाड़ी वर्णमाला के राहू-केतु हैं। इनसे बने नए वर्ण में इनका साया सदैव साथ रहता है। इनकी आत्मा वर्णों के

बगल में (ऽ) या सिर पर (ॅ) बैठी मिल जाती है। ये अपनी उपस्थिति से वर्णों की काया-पलट कर देते हैं-भाग (हिस्सा, भाग) को भागऽ (भागने की क्रिया) और बदरीनाथ को बंदरीनाथ बना सकते हैं।

इनके बिना भाषा का भवन नहीं बनाया जा सकता। इन्हें वर्णमाला में स्थान तो दिया गया है परंतु इनकी पटरी स्वरों-व्यंजनों के साथ नहीं बैठती है, अतः इन्हें अयोगवाही वर्णों के रूप में, स्वरों के बाद तथा व्यंजनों से पहले रखा जाता है। चूँकि, स्वरों की भांति, ये अयोगवाह ध्वनियाँ, व्यंजनों से मिलकर, मात्रा युक्त विभिन्न रूप बनाती हैं, अतः इन्हें बारहखड़ी में भी स्थान प्राप्त है।

हिंदी के समान ही निमाड़ी में भी एक और ध्वनि महत्वपूर्ण स्थान रखती है जिसे हम अनुनासिक कहते हैं। इसका ध्वनि चिह्न चंद्रबिंदी (ँ) है। चूँकि अनुनासिकता स्वरों के उच्चारण का एक विशेष गुण है, इसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व भी नहीं है, इसलिए इसे वर्णों की बिरादरी में शामिल नहीं किया है।

विलंबित 'अऽ', अनुस्वार और अनुनासिकता को संबंधित अध्यायों में विस्तारपूर्वक समझाया गया है।

* * *

विशेष ध्वनि विलंबित-अऽ

विलंबित-अ (अऽ) निमाड़ी की एक विशेष ध्वनि है। इसके बिना निमाड़ी भाषा का अस्तित्व निष्प्राण ही होगा। वैसे तो यह ध्वनि संस्कृत, मालवी, मगही, मैथिली, भोजपुरी, कोरकू, बागड़ी, डोगरी, तिब्बती आदि भाषाओं में भी है परंतु किसी भी भाषा में इसका स्पष्ट व्याकरणिक उपयोग एवं उल्लेख इतना व्यवस्थित नहीं है जितना कि निमाड़ी में। कहीं वर्तनी में है तो ध्वनि में नहीं है, कहीं इसके उच्चारण और लेखन में सामंजस्य नहीं है। भोजपुरी में इसे प्रायः समाप्त कर दिया गया है। मगही में भी अब इससे छुटकारा पाने के प्रयास चल रहे हैं। तिब्बती में इसका अस्पष्ट प्रयोग, शब्दारंभ में किया जाता है। संस्कृत में जहाँ संधि होने पर किसी घटक शब्द के 'अ' स्वर का लोप हो जाता है, वहाँ रिक्त स्थान पर वर्तनी में यह (ऽ) चिह्न लगाया जाता है। यह दर्शाता है कि कभी यहाँ 'अ' वर्ण की उपस्थिति थी। शब्द में उस रिक्त खंड को आकार देने के लिए लगाए जाने वाले इस चिह्न को, संस्कृत में, खंडाकार कहा जाता है। इसे वर्तनी में तो प्रतिनिधित्व मिला है परंतु उच्चारण में जानकार लोग ही इसे ठीक ढंग से ध्वनित कर पाते हैं (सह+अहम्=सोऽहम्)। निमाड़ी में इसका प्रयोग अ-स्वर की विशेष ध्वनि के लिए होता है। इसकी निश्चित वर्तनी है, और इसके प्रयोग से निमाड़ी के प्रकृतिजन्य अर्थ की पुष्टि होती है।

निमाड़ी में यह ध्वनि विलंबित 'अऽ' के नाम से जानी जाती है। इस अयोगवाह को वर्तनी में, अंग्रेज़ी के एस (ऽ) द्वारा चिह्नित किया जाता है। इस ग्रंथ में, विलंबित 'अऽ' की ध्वनि, वर्तनी तथा उसके प्रयोग पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

स्वर एवं व्यंजन के अलावा ध्वनि में मात्रा और आघात का स्थान महत्वपूर्ण है।

मात्रा-यहाँ मात्रा का अभिप्राय स्वरों के विशेष आकृति चिह्नों से न होकर उस अवधि से है जो किसी वर्ण की ध्वनि के उच्चारण में अथवा ऐसे दो उच्चारणों के बीच मौन रहने में लगती है। भाषा शास्त्र में इसे मात्राकाल कहा जाता है। इस मात्राकाल के आधार पर वर्ण ध्वनियों के निम्न भेद किए जा सकते हैं-

'अर्द्ध ह्रस्व' - आधी मात्राकाल में उच्चरित की जाने वाली ध्वनि।

ह्रस्व - एक मात्रा स्वर, अर्द्ध दीर्घ--डेढ़ मात्रा, दीर्घ--दो मात्रा, प्लुत--तीन मात्रा आदि। इनके और भी अनेक भेद किए जा सकते हैं।

मोटे तौर पर सभी मूल (शुद्ध) व्यंजनों की उच्चारण मात्रा (अवधि) अर्द्ध ह्रस्व मानी जाती है। जबकि स्वर युक्त व्यंजन तथा मूल स्वर एक मात्रिक (ह्रस्व) होते हैं। संयुक्त स्वर और संयुक्त व्यंजन द्विमात्रिक (दीर्घ) की श्रेणी में आते हैं। ओ३म शब्द में ओ की ध्वनि त्रिमात्रिक (प्लुत) है, (प्रायः इसे ओउम् लिख दिया जाता है।) विभिन्न भाषाओं की विभिन्न ध्वनियाँ इन्हीं मात्रा कालों में उच्चारित होती हैं।

निमाड़ी ध्वनियों की खोज-खबर के दौरान हमने पता लगाया है कि विलंबित अऽ की उच्चारण अवधि, पौने दो मात्रिक (ईषत् दीर्घ) है। अर्थात् जिस वर्ण में विलंबित अऽ लगता है उसका उच्चारण अर्द्ध-दीर्घ (डेढ़ मात्रा) और दीर्घ (दो मात्रा) के बीच ईषत्-दीर्घ (पौने दो मात्रा) काल का होता है।

आघात - 'ध्वनि' का दूसरा खास गुण है आघात अर्थात् प्रहार। इसके दो भेद हैं-एक 'बल' दूसरा 'सुर'। इनसे भाषिक इकाई में उच्चारण शक्ति की मात्रा तथा सुर की अनुतान (सुरलहरी) प्राप्त होती है।

निमाड़ी की विलंबित 'अऽ' ध्वनि जब किसी शब्दांत में लगती है तो वह बलाघात से उत्पन्न अनुतान के चलते उस शब्द के उच्चारण एवं उच्चारण अवधि के साथ-साथ शब्दार्थ को भी प्रभावित करती है।

मात्रा व आघात की तकनीक से विलंबित अऽ सहित एवं रहित 'वरस' शब्द के उच्चारण एवं वर्तनी की तुलना यहाँ की जा रही है-

1. वरस (वर्ष) -	व् + अ	र् + अ	स् + अ	--	उच्चारण रेखा
	(एक मात्रा)	(एक मात्रा)	(एक मात्रा)	--	उच्चारण समय
2. वरसऽ (बरसे)-	व् + अ	र् + अ	स् + अऽ	--	उच्चारण रेखा
	(एक मात्रा)	(एक मात्रा)	(पौने दो मात्रा)	--	उच्चारण समय

पहला उदाहरण (अऽ रहित) स्पष्ट है। शब्द के तीनों घटक अक्षरों की मात्रावधि समान है। दूसरे उदाहरण में उच्चारण को स्पष्ट करने के लिए वरसऽ शब्द का अक्षर विभाजन करना होगा।

वरसऽ - वर् सऽ, यहाँ वर एक अक्षर है जिसका मात्रा काल दीर्घ (द्विमात्रिक) है। दूसरा अक्षर 'सऽ' ईषत् दीर्घ (पौने दो मात्रा) का है। दोनों के बीच जो मौन है उसे 'रूपिम-संगम' कहते हैं।

उदाहरण की विवेचना-

वरस शब्द के 'स' का उच्चारण सामान्य (एक मात्रिक) है जबकि वरसऽ के 'सऽ' में शुद्ध व्यंजन 'स्' के साथ मूल-स्वर 'अ' के उच्चारण में प्रलंबन होने से इसकी मात्रावधि, ईषतदीर्घ है। दोनों शब्दों के अंत्याक्षरों (स/सऽ) पर बलाघात 'सामान्य एवं समान' है। वरस में 'स' के 'अ' पर स्वराघात सामान्य है, परंतु वरसऽ में सऽ के विलंबित 'अऽ' पर सुराघात का जोर है। यहाँ सऽ अक्षर के शीर्ष पर 'अऽ' की ध्वनि होने से उसके उच्चारण में एक सधी हुई तान आ जाती है। निमाड़ी में यह ध्वनि सम तथा प्रलंबित उच्चरित होती है। (इस ध्वनि का नाम प्रलंबित 'अऽ' भी हो सकता था, लेकिन प्रलंबित का समकक्ष शब्द, 'विलंबित' हमें परंपरा से प्राप्त हुआ है और यह सुप्रसिद्ध भी है, अतः इस ध्वनि का नाम विलंबित 'अऽ' ही उचित लगता है।) इसके उच्चारण में जिह्वा का पश्च भाग किंचित ऊपर उठता है और होंठ कुछ खुल जाते हैं। अतः यह अर्द्ध-विवृत, मध्य-पश्च ध्वनि कहलाएगी।

कुछ अन्य लोक भाषाओं में भी इस ध्वनि चिह्न (ऽ) का प्रयोग दीर्घ मात्रा के रूप में किया जाता है। उनमें यह दीर्घ स्वर शब्दारंभ तथा शब्द मध्य में भी आता है और इसका उपयोग आकारांत, ईकारांत व ओकारांत शब्दों में भी होता है, जबकि निमाड़ी में इसका प्रयोग अकारांत शब्दों के अंत्याक्षर में ही होता है। विलंबित 'अऽ' की इस स्पष्ट ध्वनि को वर्तनी में भी पूरी मुस्तैदी के साथ लिखा जाता है।

ध्वनि ग्राफ- विलंबित 'अऽ' के उच्चारण को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हमने 'अऽ' युक्त एक शब्द (भागऽ) का ध्वनि ग्राफ तैयार करके उसका अऽ ध्वनि रहित शब्द (भाग) से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

भाग (भाग्य, अंश) - संज्ञा है।

भागऽ (दौड़े) - क्रिया (विकारी) है।

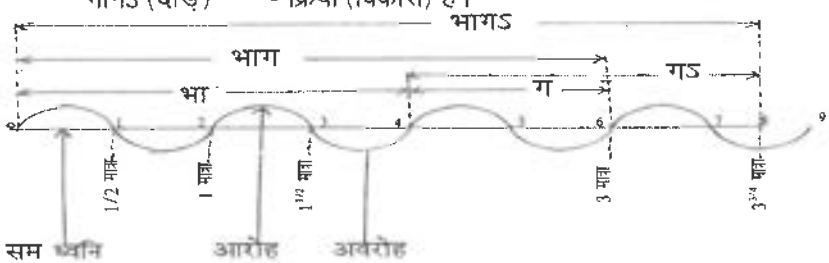

ध्वनि ग्राफ (भाग/भागऽ)

	भाग			भागऽ	
0 - 1	भ्	1/2 मात्रा	0 - 1	भ्	1/2 मात्रा
0 - 2	भ	1 मात्रा	0 - 2	भ	1 मात्रा
0 - 4	भा	2 मात्रा	0 - 4	भा	2 मात्रा
4 - 5	ग्	1/2 मात्रा	4 - 5	ग्	1/2 मात्रा
4 - 6	ग (ग्+अ)	1 मात्रा	4 - 8	गऽ (ग्+अऽ)	पौने दो मात्रा
0 - 6	भाग	3 मात्रा	0 - 8	भागऽ	पौने चार मात्रा

(विलंबित 'अऽ' का (उच्चारण) मात्राकाल--पौने दो मात्रा (ईषत् दीर्घ) है।)

भाग- भ्+आ + ग् + अ = 3 मात्रा काल
(दो मात्रा) (एक मात्रा)

भागऽ भ् + आ + ग् + अऽ = पौने चार मात्रा काल
(दो मात्रा) (पौने दो मात्रा)

विलंबित 'अऽ' का प्रयोग निमाड़ी में व्यापक रूप से किया जाता है। भाषा की विशिष्टता एवं प्राणत्व की रक्षा के लिए हमने इसके प्रयोग को व्यवस्थित तथा नियमित करने का प्रयास किया है।

प्रयोग के सूत्र :

1. निमाड़ी में, अकारांत शब्दों में विलंबित 'अऽ' का प्रयोग किया जाता है।

मखऽ (मुझे)	मनऽ (मैंने)	हमनऽ (हमने)	जेनऽ (जिसने)
अनऽ (तथा)	एकामऽ (इसमें)	उफरऽ (ऊपर)	लेणऽ (लिए)

इस ध्वनि का प्रयोग आकारांत, इकारात, उकारांत या ओकारांत शब्दों में नहीं किया जाना चाहिए।

शुद्ध प्रयोग	अशुद्ध प्रयोग	शुद्ध प्रयोग	अशुद्ध प्रयोग
न्हावणू	न्हावणूऽ	भागो	भागोऽ
अरे	अरेऽ	कवँ	कवँऽ
जावाँगा	जावाँगाऽ	वरसी	वरसीऽ

2. विलंबित 'अ' का प्रयोग शब्दों के अंत्याक्षरों में होता है। आदि या मध्य में इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

शुद्ध प्रयोग	अशुद्ध प्रयोग
हमनऽ	हमऽन
आव	आवऽसे
उननऽ	उनऽन

3. विलंबित 'अ' एक शब्द में एक ही बार प्रयुक्त होता है।

शुद्ध प्रयोग	अशुद्ध प्रयोग
उननऽ	उनऽनऽ
तुमनऽ	तुमऽनऽ
भगाड़ऽ	भगाड़ऽजऽ

4. इस ध्वनि चिह्न (ऽ) का प्रयोग एक साथ, एक ही बार किया जाना चाहिए। दो-तीन चिह्न साथ-साथ लगाना अनुचित है।

शुद्ध प्रयोग	अशुद्ध प्रयोग
भागऽ	भागऽऽ
डरऽ	डरऽऽऽ
कवँ	कवँऽऽ
झूलऽ	झूलऽऽऽऽ

टिप्पणी - इस (ऽ) चिह्न का एक से अधिक आवृत्तियों सहित प्रयोग हिंदी आदि भाषाओं में कभी-कभी देखने में आता है। ध्यातव्य है कि ऐसा प्रयोग गीत की कड़ियों में, नाटक के संवादों में, गायक अथवा पात्र को ध्वनि संकेत देने के लिए किया जाता है। हिंदी में यह, शब्द-बलसूचक विराम-चिह्न के रूप में प्रयुक्त होता है। इस विराम चिह्न का प्रभाव पूरे शब्द पर पड़ता है, जबकि निमाड़ी का विलंबित 'अऽ' एक वर्ण-ध्वनि है जो कि अन्य वर्ण की ध्वनि को परिवर्तित करके, शब्द के अर्थ को प्रभावित करता है। अतः शब्दबलसूचक संकेत (ऽऽऽ...) गायक, पात्र या निर्देशक को सूचना हेतु लेखक द्वारा दिए जाते हैं। जबकि निमाड़ी का विलंबित 'अऽ' भाषा की प्रकृति है। ... इसका प्रयोग सामान्य लेखन में एक से अधिक बार नहीं किया जाना चाहिए।

* * *

विलंबित अऽ : प्रयोग एवं वर्तनी

निमाड़ी लोकभाषा में विलंबित 'अऽ' का प्रयोग निम्नलिखित स्थितियों में होता है-

1) कारक की विभक्तियों में

संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दों के रूपांतर में कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है। कारक का रूप विभक्तियों से बनता है। निमाड़ी में कर्ता, कर्म, संप्रदान तथा अधिकरण की विभक्तियाँ अकारांत होती हैं, जिनमें विलंबित 'अऽ' का प्रयोग किया जाता है-

कारक	विभक्तियाँ	उदाहरण
कर्ता	नऽ (ने)	मनऽ (मैंने), तुमनऽ (तुमने)
		लाड़ी नऽ (लाड़ली ने), छोरी नऽ (लड़की ने)
कर्म	खऽ (को)	मखऽ (मुझे), ओखऽ (उसे)
		नानी खऽ (बच्ची को), भसी खऽ (भैंस को)
संप्रदान	खऽ, का-लेणऽ (को, के-लिए)	लुगई का लेणऽ (पत्नी के लिए)
		म्हारी तरफ सी छोरा खऽ (मेरी ओर से लड़के को)
अधिकरण	मऽ, पऽ, उफरऽ (में, पर, ऊपर)	गाड़ी मऽ (गाड़ी में) पूट पऽ (पीठ पर)
		माथा का उफरऽ (सिर के ऊपर)

2. बहुवचन बनाने में

निमाड़ी में एकवचन से बहुवचन बनाने में मुख्यतः नऽ प्रत्यय लगाया जाता है। विभक्ति सहित बहुवचन संज्ञा शब्दों में विलंबित 'अऽ' प्रत्यय लगता है-

कुतरानऽ (कुत्तों), घोड़ानऽ (घोड़ों), बामणनऽ (ब्राह्मणों), डोळानऽ (आँखों), गाड़ीनऽ (गाड़ियों), नद्दीनऽ (नदियों), लुगईनऽ (महिलाओं)

विभक्ति सहित बहुवचन रूपों का प्रयोग एवं वर्तनी

कर्ता-- बामणनऽ नऽ (ब्राह्मणों ने), घोड़ानऽ नऽ (घोड़ों ने), लुगईनऽ नऽ (महिलाओं ने)

कर्म-- गाडीनऽ खऽ (गाड़ियों को), डोळानऽ खऽ (आँखों को), कुतरानऽ खऽ कुत्तों को

टिप्पणी : एकाक्षरी शब्दों से विलंबित-अ (ऽ) चिह्न अब हटा लिया गया है। संदर्भ हेतु, 'निमाड़ी में नवाचार' नामक अध्याय देखें।

संप्रदान-- बईणनऽ का लेणऽ (बहनों के लिए), गावड़ीनऽ का लेणऽ (गायों के लिए)
अधिकरण--पोर्‌यानऽ मऽ (लड़कों में), ढोरनऽ पऽ (पशुओं पर)

3. अकर्मक क्रिया की मूल धातुओं में
झूलऽ (झूले), उकळऽ (उबले), गरजऽ (गरजे)
कापऽ (काँपे), भावऽ (रुचिकर लगे), ढाकऽ (ढाँके)
बळऽ (जले), रड़ऽ (रोए), बोलऽ (बोले)
सुणऽ (ध्यान देवे), धावऽ (दुग्धपान करे), तरसऽ (तरसे)

4. अकर्मक क्रिया की कुछ यौगिक (साधित) धातुओं में
चलऽ (चले), कूदऽ (कूदे), घोरऽ (खर्राटे ले)
चोरऽ (चोरी करे), लड़ऽ (लड़े), झुरऽ (तरसे)

5. सकर्मक क्रिया की अधिकांश यौगिक धातुओं में
काट ऽ (काटे), निकाळऽ (निकले), घोळऽ (घोले)
वह्‌वाड़ऽ (बहावे), धवाड़ऽ (धुलावे), न्हवाड़ऽ (नहलाए)

6. संभाव्य भविष्यकाल की क्रियाओं में

संभाव्य भविष्यकाल की द्वितीय और तृतीय पुरुष एकवचन तथा तृतीय पुरुष बहुवचन रूप बनाते समय मूल धातु के साथ विलंबित 'अऽ' का प्रयोग किया जाता है-

द्वितीय पु. एकवचन	तृतीय पु.एकवचन	तृतीय पु.बहुवचन
तू लिखऽ (संभव है, तू लिखे)	ऊ लिखऽ (वह लिखे)	ऊ सब लिखऽ (वे सब लिखें)
तू भणऽ (संभव है, तू पढ़े)	ऊ भणऽ (वह पढ़े)	ऊ सब भणऽ (वे सब पढ़ें)
तू उठऽ (संभव है, तू उठे)	ऊ उठऽ (वह उठे)	ऊ सब उठऽ (वे सब उठें)

7. सामान्य भविष्यकाल की क्रियाओं में

सामान्य भविष्यकाल की क्रियाओं के द्वितीय और तृतीय पुरुष एकवचन तथा तृतीय पुरुष बहुवचन रूपों में धातु के बाद किंतु भविष्यकाल द्योतक 'गा' प्रत्यय से पूर्व विलंबित 'अऽ' का प्रयोग होता है।

द्वितीय पुरुष एकवचन	तृतीय पुरुष एकवचन	तृतीय पुरुष बहुवचन
तू लिखऽगा (तू लिखेगा)	ऊ लिखऽगा (वह लिखेगा)	ऊ सब लिखऽगा (वे लिखेंगे)
तू रड़ऽगा (तू रोएगा)	ऊ रड़ऽगा (वह रोएगा)	ऊ सब रड़ऽगा (वे रोएँगे)
तू झूलऽगा (तू झूलेगा)	ऊ झूलऽगा (वह झूलेगा)	ऊ सब झूलऽगा (वे झूलेंगे)

तू लिखऽगऽ	ऊ रड़ऽगऽ	ऊ सब लिखऽगऽ
तू झूलऽगऽ	ऊ झूलऽगऽ	ऊ सब झूलऽगऽ

8. द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाओं में

यहाँ भी सामान्य भविष्य काल की तरह ही क्रियाओं के द्वितीय और तृतीय पुरुष एकवचन तथा तृतीय पुरुष बहुतवचन रूपों में विलंबित 'अऽ' का प्रयोग किया जाता है-

तू लिखाड़ऽगऽ / लिखाड़ऽगा (तुम लिखवाओगे), ऊ सब लिखाड़ऽगऽ / लिखाड़ऽगा (वे सब लिखवाएँगे।)

टिप्पणी - 1 निमाड़ के पश्चिमी भूभाग में, प्रेरणार्थक क्रियाओं में, गा' के स्थान पर 'गऽ' प्रत्यय लगाया जाता है। (लिखऽगऽ, रड़ऽगऽ)। इसका कारण वाणी की कोमलता है,जोकि निकटवर्ती मलावी लोकभाषा का प्रभाव है।

टिप्पणी-2

नियमानुसार विलंबित 'अऽ' का प्रयोग शब्दांत में होना चाहिए जबकि उपरोक्त उदाहरण में इसका प्रयोग उपांत्य अक्षर में हो रहा है। इसे अपवाद स्वरूप माना जा सकता है। परंतु ध्यान से देखा जाए तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है। विलंबित 'अऽ' तो क्रिया के अंत में ही लगा है। (लिखऽ, लिखाड़ऽ, रड़ऽ, झूलऽ, झुलाड़ऽ) चूँकि क्रिया में भविष्यकाल द्योतक प्रत्यय 'गा' लगाया जाता है, अतः इन शब्दों के रूप, लिखऽगा, लिखाड़ऽगा, रडऽगा आदि हो जाते हैं जो कि उपांत्याक्षरों में विलंबित 'अऽ' लगने का आभास देते हैं। यह स्थिति केवल भविष्यकाल तथा द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाओं के कुछ रूपों तक ही सीमित हैं। ये मात्र शब्द न रहकर, पद-रूप बन गए हैं।

9. पूर्वकालिक क्रिया रूपों में

ऊ उठीनऽ मोढ़ाएज (वह उठकर अँगड़ाई लेती है)

छोरी भणीनऽ आवती हुसे (लड़की पढ़कर आती होगी)

10. रूपांतरित सर्वनामों में विलंबित 'अऽ'

सर्वनाम के छह भेदों में से पुरुषवाचक, निजवाचक, निश्चयवाचक तथा अनिश्चवाचक सर्वनाम के कारकों की, अकारांत विभक्तियों में विलंबित 'अऽ' लगाया जाता है-

(क) पुरुषवाचक सर्वनाम (उत्तम पुरुष) में-

एकवचन	बहुवचन
मनऽ (मैंने), मखऽ (मुझे), म्हारा लेणऽ (मेरे लिए) म्हारामऽ मुझमें, म्हारा प$ (मुझ पर)	हमनऽ (हमने), हमखऽ (हमको) हमारा लेणऽ (हमारे लिए), हमारामऽ (हममें) हमारा प$ (हम पर)

(ख) पुरुषवाचक (मध्यमपुरुष) सर्वनाम में-

एकवचन	बहुवचन
तूनऽ (तूने), तुख (तुझे), थारा लेणऽ (तेरे लिए), थारामऽ (तुझमें), थारा प$ (तुझ पर)	तुमनऽ (तुमने), तुमखऽ (तुमको) तुम्हारामऽ (तुममें), तुम्हारा प$ (तुम लोगों पर)

आदर सूचक शब्द, 'आप' के रूपांतरों में भी 'अऽ' का प्रयोग इसी प्रकार किया जाता है।)

(ग) पुरुषवाचक (अन्य पुरुष) सर्वनाम में-

एकवचन	बहुवचन
ओनऽ (उसने), ओखऽ (उसको), ओकालेणऽ (उसके लिए) ओकामऽ (उसमें) ओका प$ (उस पर)	उननऽ (उन्होंने), उनखऽ (उनको) उनका लेणऽ (उनके लिए), उनका प$ (उन पर)

(घ) निज वाचक सर्वनाम में-

निजवाचक 'आप' के लिए निमाड़ी में अपण (अपुण) या खुद शब्द का प्रयोग किया जाता है। दोनों वचनों में समान रूप से रूपांतरित होने वाले इस सर्वनाम में विलंबित अऽ का प्रयोग-

अपण नऽ (स्वयं ने) अपण खऽ (अपने को)
अपणा लेणऽ (अपने लिए) अपणा मऽ (अपने में)
अपणा उफर ऽ (अपने ऊपर)

(ङ) निश्चयवाचक (निकटवर्ती) सर्वनाम में-

एकवचन	बहुवचन
एनऽ (इसने), एखऽ (इसको) एका लेणऽ (इसके लिए), एमऽ (इसमें), एपऽ (इस पर) एका प$ (इस पर)	इननऽ (इन्होंने), इनखऽ (इनको) इनका लेणऽ (इनके लिए), इनमऽ (इनमें), इनका प$ (इनके ऊपर)

(च) निश्चयवाचक (दूरवर्ती सर्वनाम में-

एकवचन	बहुवचन
ओनऽ (उसने), ओखऽ (उसको)	उननऽ (उन्होंने), उनखऽ (उनको)
आदि, अन्य पुरुष, (पुरुषवाचक की तरह)	आदि, अन्य पुरुष सर्वनामों की तरह

(छ) अनिश्चयवाचक सर्वनाम में-

निमाड़ी में 'कोई' एवं 'कई' अनिश्चयवाचक सर्वनाम शब्दों की अकारांत विभक्तियों में विलंबित 'अऽ' का प्रयोग होता है। यहाँ विभक्तियाँ विश्लिष्ट रहती हैं।

(1) सर्वनाम 'कोई' का प्रयोग एकवचन में ही होता है-
कोई नऽ (किसी ने), कोई खऽ (किसी को), कोई का लेणऽ (किसी के लिए),
कोई मऽ (किसी में), कोई पऽ (किसी पर)

(2) हिंदी के अनिश्चयवाचक 'कुछ' के स्थान पर निमाड़ी में 'कई' का प्रयोग होता है। यह बहुवचन का द्योतक है। इसका प्रयोग संज्ञा की तरह किया जाता है। इसकी अकारांत विभक्तियों में भी विलंबित 'अऽ' का प्रयोग होता है। विभक्तियाँ विश्लिष्ट होती हैं।
कई नऽ कई (कुछ न कुछ), कई मऽ (कुछ में), कई पऽ (कुछ पर)

(ज) संबंधवाचक सर्वनाम में-

ए.व.- जेनऽ (जिसने, जेखऽ (जिसको), जेका लेणऽ (जिसके लिए),
जेका मऽ (जिसमें), जेका पऽ (जिस पर)

ब.व.- जिननऽ (जिन्होंने), जिनखऽ (जिनको), जिनका लेणऽ (जिनके लिए),
जिनका मऽ (जिनमें), जिन पऽ (जिन पर)

(झ) प्रश्नवाचक सर्वनाम में-

ए.व.- कुणनऽ (किसने), कुणखऽ (किसको), कुणका लेणऽ (किसके लिए)
कुणका मऽ (किसमें), कुणका पऽ (किस पर)

ब.व.- किननऽ (किन्होंने), किनखऽ (किनको), किनका लेणऽ (किनके लिए)
किनमऽ (किनमें), किनका पऽ (किनके ऊपर)

11. अविकारी शब्दों में विलंबित 'अऽ'

कुछ क्रिया विशेषण, संबंधबोधक तथा समुच्चयबोधक शब्दों में विलंबित अऽ का प्रयोग किया जाता है।

नोट – निमाड़ी में कर्म-कारक की विभक्ति, कऽ तथा खऽ दोनों होती हैं;
अतः रेखांकित शब्दों को जेकऽ, जिनकऽ,तथा कुणकऽ भी लिखा जाता है।

(क) क्रियाविशेषण अव्ययों में-

धीरऽ-धीरऽ (धीरे-धीरे), बठऽ-बठऽ (बैठे-बैठे), पयलऽ-पयलऽ (पहले-पहले)

एक कावऽ (एक बार), दुई कावऽ (दो बार)

एतरा मऽ (इतने में), आखिर मऽ (अंत में)

दौड़ीनऽ (दौड़कर), देखी करीनऽ (देख करके)

(ख) संबंधबोधक अव्ययों में-

आगऽ (आगे), पाछऽ (पीछे), उफरऽ (ऊपर), निच्चऽ (नीचे), भायरऽ (बाहर),

भितरऽ (भीतर), वास्तऽ (लिए)

(नोट-उपरोक्त शब्दों की अन्य ध्वनि तथा वर्तनी भी चलन में है-क्रमशः-अगेड़ी, पछेड़ी, उप्पर/अद्धर, हेट ऽ, भित्तर, लेणऽ)

(ग) समुच्चयबोधक (संयोजक) अव्ययों में-

नऽ (और)- जिमीलऽ नऽ सोईजा (भोजन करले और सो जा)

अनऽ (तथा)- संग्या अनऽ सर्वनाम (संज्ञा तथा सर्वनाम)

वास्तऽ (खातिर)- ओका वास्तऽ जान हाजिर छे (उसके खातिर जान हाजिर है)

लेणऽ (लिए)- कुणका लेणऽ वाट देखूँ (किसके लिए राह निहारूँ)

12. हेतु हेतुमद् भूतकाल की क्रियाओं में-

ऊ आवऽ तो हउँ जाऊँ (वह आए तो मैं जाऊँ)

नानो सवऽ तो घट्टी दळूँ (बालक सोए तो चक्की पीसूँ)

13. पूर्वकालिक कृदंत में-

ऊ तो मरीनऽ अमर हुई गयो (वह तो मरकर अमर हो गया)

बासण धोईनऽ धरजे (बर्तन धोकर रखना)

हऊँ देखी-परखीनऽ बताऊँगा (मैं देख-परखकर बताऊँगी)

14. संबोधन कारक के बहुवचन रूपों में-

लुगईनऽ होणी! (महिलाओं !), पोर्‌यानऽ होणी! (लड़कों !) भाईनऽ होणी! (भाइयों !)

(नोट-उपर्युक्त पदों का प्रयोग, ध्यान आकर्षित करने, आत्मीय भाव जताने अथवा समूह को सीधे संबोधित करने के लिए किया जाता है--भाईनऽ होणी! अवँ तो जागो (भाइयों ! अब तो जाग्रत हो जाओ) यदि बात इन लोगों के बारे में हो रही हो तो संज्ञा एकवचन में होगी और होणी के स्थान पर होण का प्रयोग किया जाएगा-छोरी होण

घणो माथो पचावज (लड़कियाँ, बहुत सिर पचाती हैं) पोर्‌या होण लुच्चा छे। (लड़के लोग लफंगे हैं)

15. ...क्षरी अकारांत शब्दों में – एकमात्र शब्द है, 'नऽ'जोकि वाक्य में, संयोजक के रूप में प्रयुक्त होता है। यथा – भाई नऽ बईण (भाई और बहन) दाळ नऽ भात (दाल और चावल।

रोचक तथ्य-

कुछ शब्द, कुछेक राजनेताओं के समान दोहरी छवि लिए होते हैं। इनका चेहरा भले ही एक रहे परंतु मुखौटे दो होते हैं। ये द्विरूप शब्द जहाँ एक ओर अकारांत संज्ञाएँ हैं वहीं दूसरी ओर ये भाववाचक कृदंत भी हैं--पटक, लूट, दौड़, रगड़, चमक, फळ, फूल, खेल, छाप, नाच, मेल, परस, छूट, बोल, भाग, तोड़, मार, बिगाड़, वरस, पेर आदि। जब ये शब्द संज्ञा के रूप में वाक्यों में प्रयुक्त होते हैं तो इनकी ध्वनि ओर वर्तनी इसी रूप में रहती है, परंतु जब इनका प्रयोग वाक्य में क्रिया के रूप में होता है तो इनके अंतिम वर्ण में विलंबित 'अऽ' लगने से इनकी ध्वनि एवं वर्तनी परिवर्तित हो जाती है।

	संज्ञा रूप	क्रिया रूप
लूट-	केतरी लूट मचीज	एतरो मत लूट ऽ रे दाजी
	(कितनी लूट मची है)	(इतना मत लूटे रे बाबा)
दौड़-	दौड़ वऊ दिवाळई आई	गावड़ी का पछेड़ी मत दौड़ऽ
	(दौड़ बहू दीवाली आई)	(गाय के पीछे मत दौड़ो)
रगड़-	टोंगळ्या मऽ रगड़ लगीज	फेणा सी हाथ-पाँय कूण रगड़ऽ ?
	(घुटने में रगड़ लगी है)	खराद-पत्थर से हाथ-पाँव कौन रगड़े ?)
नाच-	सासू म्हारी नाच,नचाड़ज	वादळा देखीनऽ मोर नाचऽ
	(मेरी सास नाच, नचवाती है)	(बादल देखकर मोर नाचते हैं)
बोल-	बोल, थारी काई मंसा ?	वायड़ो मत बोलऽ रे भाई
	(बोलो, तुम्हारी क्या मर्जी)	(बंधुवर, कठोर वचन मत बोलिए)
भाग-	अपणो भाग तो असोज छे	धन का पछेड़ी कूण भागऽ
	(अपना भाग्य तो ऐसा ही है)	(धन के पीछे कौन भागे)

जहाँ विलंबित 'अऽ' का प्रयोग नहीं किया जाता

यद्यपि अकारांत शब्दों में विलंबित 'अऽ' के प्रयोग का विधान है परंतु प्रत्येक अकारांत शब्द के अंत्याक्षर में यह अनिवार्य नहीं है। निम्न स्थानों पर 'अऽ' का प्रयोग आवश्यक नहीं है।

(क) वर्तमान कालिक क्रिया शब्दों में-(अऽ नहीं लगता)

सामान्य वर्तमानकाल की एकवचन तथा बहुवचन क्रिया रूपों में विलंबित 'अऽ' का प्रयोग नहीं होता है। निमाड़ी में वर्तमान कालीन क्रिया रूप बनाने के लिए धातु के आगे 'ज' प्रत्यय लगाया जाता है। क्रिया शब्दों के इन रूपों में 'अऽ' नहीं लागया जाना चाहिए।

लिखज दौड़ज
वाचोज भागज
न्हवाड़ज रड़ज

(ख) संयुक्ताक्षरों में-(अऽ नहीं लगता)

यग्य, संग, इल्म, ठंड, बंड, अन्न,
नळंद, काळो-कुट्ट, अंधारो-गुप्प, सुट्ट, कवँ

(ग) त्रकारांत शब्दों में- (अऽ नहीं लगता)

पुत्र, छत्र, गौमूत्र, इत्र

* * *

सानुनासिक ध्वनियाँ

वाणी का उद्‌गम मानव मुख के अवयवों से होता है जिसका आधार प्रश्वास वायु है। यहीं से शब्द तैरते हुए वक्ता के मुख से श्रोता के कानों तक पहुँचते हैं। उच्चारण की तकनीक के हिसाब से प्राणवायु की निकासी के आधार पर निमाड़ी ध्वनियों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है-

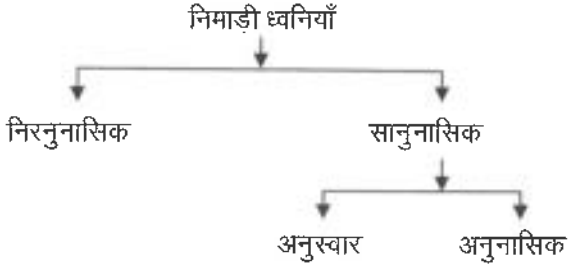

निरनुनासिक--केवल मुँह से बोली जानेवाली ध्वनियाँ, निरनुनासिक कहलाती हैं। इनके उच्चारण में नाक से प्रश्वास नहीं निकलती। जैसे-माथो (सिर), एड्‌यो (मूर्ख), भायरी (बुहारनी), मुक्को (घूँसा) वयड़ी (बहू), टोपली (टोकरी)

सानुनासिक--इनके उच्चारण में नाक और मुँह, दोनों से श्वास वायु बाहर निकलती है। सानुनासिक ध्वनियाँ, नासिक्य ध्वनियाँ भी कहलाती हैं। जैसे--संजा (संध्या), उंडी (गहरी), संचरो (सज्जी, पापड़खार), कंदील (लालटेन), माँजरी (बिल्ली), मुँडो (मुँह)

सानुनासिक ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं--अनुस्वार और अनुनासिक। अनुस्वार एवं अनुनासिक, अलग-अलग ध्वनियाँ हैं। अनुस्वार ध्वनि स्वरों का अनुसरण करती हैं जबकि अनुनासिक ध्वनि, नासिक्यता का। इन अयोगवाह ध्वनियों की भूमिका, भाषा में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। स्वर और व्यंजनों की जमात से अलग इन्हें वर्णमाला में स्वतंत्र स्थान प्राप्त है। आम तौर पर अनुस्वार का संबंध व्यंजनों से है जबकि अनुनासिकता का स्वरों से। अनुनासिकता का नासिक्य-व्यंजनों से कुछ लेना-देना नहीं होता है। अनुस्वार को स्वर और व्यंजनों के बीच स्थान प्राप्त है जबकि अनुनासिकता को स्वरों के माथे पर तो बैठाया है परंतु वर्णमाला से बाहर रखा है।

अनुस्वार-

अनुस्वार, नासिक्य व्यंजनों की प्रतिनिधि आकृति है। यह व्यंजन नहीं है, परंतु पंचमवर्णी व्यंजनों के स्थान पर शिरोरेखा के ऊपर बिंदी के रूप में लगकर, अक्षरों के उच्चारण को प्रभावित करती है। यह अशरीरी वर्ण एक ध्वनि चिह्न है। अनुस्वार के उच्चारण में मुँह की अपेक्षा नाक से वायु अधिक निकलती है जिससे उच्चारण में स्पष्टता आती है। अनुस्वार की शुद्ध नासिक्य-व्यंजन ध्वनि स्वतंत्र रूप से उच्चरित नहीं होती है।

निमाड़ी कठिनता से सरलता की ओर अग्रगामी लोकभाषा है। इसने भाषिक परिवर्तनों को सहज स्वीकार किया है। पारंपरिक पाँच नासिक्य व्यंजनों में से क-वर्ग के 'ङ' और च-वर्ग के 'ञ' का प्रयोग आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में प्रायः विलुप्त होता जा रहा है। इन वर्णों का प्रयोग संस्कृत के तत्सम शब्दों में प्रायः होता रहा है। संस्कृत के तत्सम शब्द, निमाड़ी में नगण्य हैं, अतः निमाड़ी ने इन दोनों पंचमवर्णों को अपने वर्णकुल में शामिल नहीं किया है परंतु इनकी ध्वनियों से परहेज भी नहीं किया है। परिणामस्वरूप निमाड़ी में, पाँचों नासिक्य ध्वनियाँ (ङ, ञ, ण, न, म) उच्चरित तो होती हैं परंतु लेखन में तीन ही वर्णों (ण, न, म) का प्रयोग किया जाता है। 'ङ' और 'ञ' ध्वनियों के लिए अनुस्वार का प्रयोग निश्चित एवं सुरक्षित है। बाकी नासिक्य ध्वनियों का प्रयोग अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग प्रकार से होता है जिसे हमने सूत्रबद्ध करने का प्रयत्न किया है-

एक--निमाड़ी में पाँचों वर्गों की स्वर रहित नासिक्य ध्वनियों के लिए अनुस्वार की बिंदी का प्रयोग किया जाता है। अङ्गो को अंगो (अँगरखा), गङ्गा को गंगा, पञ्चो को पंचो (उत्तरीय), मञ्जन को मँजन, बण्डी को बंडी (बनियान), कण्डो को कंडो (उपला), तन्था को तंथा (परवाह), पिड़ान्धो को पिड़ांधो (भकराँधा), अम्बो को अंबो (आम), चम्पक को चंपक (पायल) लिखा जाता है।

(टिप्पणी--यद्यपि उच्चारण अवयवों की भिन्नता के कारण पाँचों वर्गों में अनुस्वार उच्चारण में भी भिन्नता है किंतु निमाड़ी में पाँचों नासिक्य ध्वनियों के लिए अनुस्वार का प्रयोग किया जाता है। भाषा के अभ्यास से सही उच्चारण स्वतः, स्वाभाविक रूप से होने लगता है। 'गंगा' शब्द के उच्चारण में गन्गा, गम्गा, गञ्गा या गण्गा की नहीं अपितु गङ्गा की ही ध्वनि निकलती है। आखिरकार भाषा ध्वन्यात्मक अनुकरण से ही तो सीखी जाती है।)

दो--जब दो नासिक्य ध्वनियाँ साथ-साथ आती हों, चाहे वे भिन्न-भिन्न हों अथवा समान (एक का द्वित्व) हो, तो ऐसी स्थिति में नासिक्य व्यंजन सुरक्षित रहता है। उसके प्रतिनिधि अनुस्वार का प्रयोग यहाँ नहीं होता-

भिन्न नासिक्य ध्वनियाँ - भण्नू (पढ़ना) गुण्नू (मनन करना), भण्नाणू (भिनभिनाना)

द्वित्व नासिक्य ध्वनियाँ - नन्नू (नन्हा) मम्माय (नानी)
बान्नो (दरवाजा) अम्माड़ी (लाल सनई)
घिन्नाटी (घुमरी) गम्मत (मजमा)
नान्नाना (छोटे-छोटे) कम्मर (कमर)
बन्नम (लोग) जिम्मो (जवाबदेही)
अम्मल (अफीम) अम्मर (अमर)

तीन--अंतस्थ 'य', 'र', 'ल', 'व' तथा उष्म 'ह' वर्ण के साथ नासिक्य व्यंजन सुरक्षित रहता है-

न्यारो (अलग, निराला) पन्हो (अरज)
न्यूतो (निमंत्रण) पण्हो (पना)
पुन्योव (पूर्णिमा) न्हार (शेर)
म्यानी (पाजामें की फली) अण्हाण (अदहन)
माकण्या (खटमल) न्हावण (स्नान)
डाकण्यो (टोनहया) म्होरित (मुहुर्त)
हधरन्यो (रसोई घर का नैपकिन) म्हउ (महुआ)
अजाण्यो (अबोध, अनजान) म्हई (छाँछ)
अम्लाणो (इमली का पना) वन्ही (ओढ़नी)
वाण्यो (बनिया) म्हयनो (महीना)
पन्वाड़ी (तमोली) पन्हई (जूता)

अनुनासिकता-

अनुनासिकता ध्वनि के उच्चारण में मुँह की अपेक्षा नाक से प्रश्वास कम निकलती है और उच्चारण में लघुता बनी रहती है।

हम जानते हैं कि स्वरों का उच्चारण मुख से होता है। यदि इन्हीं स्वरों को बोलते समय मुख के साथ-साथ नाक से भी प्रश्वास छोड़ी जाए तो ध्वनि में

अनुनासिकता आ जाती है। इस प्रकार उच्चारित स्वर ही अनुनासिक कहलाते हैं। अतः अनुनासिकता स्वरों के उच्चारण की एक विशेषता है। अनुनासिकता अपने आप में स्वतंत्र ध्वनि नहीं है, परंतु स्वरों की उच्चारित ध्वनि को प्रभावित करती है। स्वरों का उच्चारण-स्थान तो लगभग वही रहता है, सिर्फ कोमल तालु कुछ नीचे झुक जाता है। इस अनुनासिक ध्वनि को निमाड़ी की वर्तनी में चंद्रबिंदी के चिह्न से अंकित करते हैं-

अँगळई (अंगुली), अल्याँग (यहाँ), माँजरी (बिल्ली)

मुँडल्यो (खुले सिर वाला), राँधणी (रसोई घर), छुछँदरी (छछूँदर)

यदि किसी अनुनासिक वर्ण में शिरोरेखा पर लगने वाली (इ, ई, ए, ऐ, ओ, औ की) मात्रा भी लगी हो तो लेखन, टंकण एवं मुद्रण की सुविधा तथा भाषा में एकरूपता लाने के लिए चंद्रबिंदी न लगाते हुए केवल (अनुस्वार की तरह) बिंदी का प्रयोग किया जाता है-

रूप जो होना चाहिए		रूप जो प्रयोग में आता है
डौँडी	(मुनादी)	डोंडी
सौँदारो	(अरुणोदय)	सौंदारो
ठिँगणो	(नाटा)	ठिंगणो
भिँडू	(हमखिलाड़ी)	भिंडू
ढेँडो	(जुवार का ठूँठ)	ढेंडो
कौँडणू	(कमरे में बंद करके रखना)	कोंडणू
औँधो	(औंधा)	औंधो
दौँदाळ्यो	(भोंदू)	दोंदाळ्यो

प्रयोग में सावधानी--लोक भाषा में अनुनासिकता का विशेष महत्व रहता है। इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए अन्यथा अर्थ में आमूल परिवर्तन हो जाता है।

भाग = दौड़	घुघरी = बहुत छोटे घुंघरू
भाँग = मादक पदार्थ	घुँघरी = गेहूँ और गुड़ का मिष्ठान्न
का = संबंध कारक की विभक्ति	आधी = अर्द्ध
काँ = कहाँ	आँधी = तेज हवा
डाड = दाढ़	डाडी = दाढ़ी
डाँड = डंठल	डाँडी = छड़ी

अनुनासिकता का लोप--प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की तर्ज पर निमाड़ी के अधिकांश शब्दों में अनुनासिकता का लोप हो जाता है। वैसे भी पश्चिमी हिंदी की अन्य बोलियों की तुलना में निमाड़ी में सानुनासिक वर्णों का प्रयोग कम होता है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के ऐसे अनेक सानुनासिक शब्द हैं जो निमाड़ी में निरनुनासिक उच्चरित किए जाते हैं और वैसे ही लिखे भी जाते हैं-

हिंदी (सानुनासिक) शब्द	निमाड़ी (निरनुनासिक) रूप
आँच	आच
दाँत	दात
ऊँचा	उच्चो
होंठ	होट
डाँट	डाट
साँप	साप
चाँटा	चाटा
ऊँट	ऊट
फाँस	फ़ास
कुंकू	कूकू
हँसना	हसणू
चोंच	चोच
साँस	सास
काँसा	कासो
मांस	मास
टाँकना	टाकणू
सौंफ	सोप

रोचक तथ्य--अध्ययन में पाया गया है कि कुछ अकार वर्णों में जहाँ अनुस्वार का प्रयोग हो रहा है, वहीं उनके आकार रूपों में अनुनासिक ध्वनि आ जाती है-

अकार में अनुस्वार	आकार में अनुनासिक
कंद (गांठदार जड़)	काँदो (प्याज)
संजा (संध्या)	साँजो (गुझिए का भरण)
डंडी (छड़ी, टहनी, डंठळ)	डाँडई (जोड़वाली धोती)

अंगो (अँगरखा)	आँगणो (आँगन)
रंडी (वेश्या)	राँड (विधवा)
कंगो (कंधा)	काँगण (दो सेर की माप)
डंगर (पशु)	डाँगरो (खरबूजे जैसा एक फल)

आरोपित अनुनासिकता--कई बार कुछ शब्दों में अनुनासिकता नहीं होती। उनमें पंचम वर्ण युक्त संयुक्ताक्षर भी नहीं होते, परंतु उनके उच्चारण में मौखिक अनुनासिकता सुनाई देती है। ऐसा तब होता है जब प्रभावित वर्ण से पहले या बाद में कोई नासिक्य व्यंजन हो। उस आगे या पीछे के नासिक्य व्यंजन की गूंज की उपस्थिति अनुनासिकता का आभास दिलाती है। यह आरोपित अनुनासिकता वास्तविक नहीं होती है। ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह आरोपित अनुनासिकता उच्चारण तक ही सीमित रहे। इसे वर्तनी में लाने से भाषा अशुद्ध होती है। उदाहरण देखें-

अशुद्ध रूप		शुद्ध रूप
नांव	(नाम)	नाव
नांग	(सर्प)	नाग
अपणों	(अपना)	अपणो
किरसांण	(कृषक)	किरसाण
म्हँई	(छाछ)	म्हई
डरनूं	(डरना)	डरनू
खाणूं	(खाना)	खाणू
जिमणूं	(भोजन करना)	जिमणू
माँगूंगां	(माँग करूँगा)	माँगूंगा
जावाँगां	(जाएँगे)	जावाँगा
नखूंन	(नाखून)	नखून
अँनऽ	(और)	अनऽ
न्हावणूं	(नहाना)	न्हावणू
आणों	(गौना)	आणो
पन्हईं	(जूता)	पन्हई
मंऽ	(में)	मऽ
नंऽ	(ने)	नऽ

माँथो	(सिर)	माथो
सैणों	(अन्नकोष्ठ का निकास)	सैणो

विदेशी शब्दों में सानुनासिकता--विदेशी भाषाओं से निमाड़ी में आगत सानुनासिक शब्दों की वर्तनी में सहजता तथा एकरूपता लाने के लिए समान रूप से अनुस्वार का प्रयोग किया जाता है-

पेंट	सेंट	वारंट	एजेंट	कंपूटर
हंटर	केंसर	सेंटर	इंच	लेंस
इंजिन	बेंड	अंदेसो	अंदाज	अंगरेज
टंकी	अंगूर	संतरो	मुंसी	चंदो
संदूक	अयंदा	संगमरमर	सिंगल	कंपनी
इंतिजाम	इंतिजार	कांजोस (कांजी-हाउस)		पेंसन

* * *

नासिक्य व्यंजन (न-ण-म)

निमाड़ी में पाँच नासिक्य ध्वनियाँ हैं, परंतु तीन नासिक्य वर्णों--'ण', 'न' और 'म' का ही प्रयोग किया जाता है। इनमें 'म' का उच्चारण एवं प्रयोग ठीक ठाक हो जाता है, परंतु 'ण' और 'न' प्रायः एक दूसरे के घर में जाकर, एक दूसरे को हटाकर, उसके स्थान पर विराजमान हो जाते हैं।

निमाड़ी में 'ण' और 'न' नासिक्य, स्पर्श, सघोष वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख और नासिका से प्रश्वास होता है। दोनों ध्वनियाँ अनुनासिक, अल्पप्राण हैं। इनमें 'न' दंत्य वर्ण है जबकि 'ण' मूर्धन्य। 'न' ध्वनि का प्रयोग आदि, मध्य और अंत में हो सकता है, परंतु 'ण' का प्रयोग मध्य तथा अंत में ही होता है।

ट-वर्ग के पंचमाक्षर 'ण' का प्रयोग प्रायः संस्कृत के तत्सम शब्दों में होता है और संस्कृत के शब्द निमाड़ी में नाममात्र ही है। प्राकृत के णोन-सूत्र के अनुसार इन शब्दों में आए 'ण' वर्ण का निमाड़ी में रूप परिवर्तन होकर 'न' हो जाता है-

णकार युक्त शब्द	नकार में परिवर्तित निमाड़ी रूप
पूर्णिमा	पुन्योव
पुण्य	पुन
विष्णु	विसनू
कृष्ण	किसन
स्वर्ण	सोन्नो

निमाड़ी में 'ण' वर्ण का प्रयोग अधिक होता है। अनेक शब्दों में प्राकृत के णोण-सूत्र के अनुसार, 'न' का रूप ण में परिवर्तित हो जाता है।

निमाड़ी की सामान्य क्रियाओं के रूप ओकारांत होते हैं परंतु निमाड़ अंचल के पश्चिमी क्षेत्र में निकटवर्ती आदिवासी भीली भाषाओं के प्रभाव से ये रूप उकारांत हो जाते हैं। क्रिया के ये दोनों रूप निमाड़ी में मान्य हैं।

सामान्य क्रिया शब्द नकार रूप	णकार युक्त निमाडी रूप
जाना	जाणो/जाणू
पढ़ना	पढ़णो/पढ़णू
नहाना	न्हावणो/न्हावणू
सुलाना	सवाड़णो/सवाड़णू
धोना	धवणो/धवणू
दुग्धपान कराना	धवाड़णो/धवाड़णू
जीमना	जीमणो/जीमणू
बहना	वह्यणो/वह्यणू
लड़ना	लड़णो/लड़णू
चिल्लाना	चिल्लाणो/चिल्लाणू
क्रियार्थक शब्द 'नकार' रूप	निमाडी 'णकार' रूप
लेने	लेणऽ
बेचने	एचणऽ
देखने	देखणऽ
खाने	खाणऽ
आने	आवणऽ
संज्ञा शब्द 'नकार' रूप	निमाडी 'णकार' रूप
पानी	पाणी
बर्तन	बासण
बहन	बईण
आँगन	अँगणो
रानी	राणी
धानी	धाणी
सगुन	सगुण
अवगुन	औगुण
ननंद	नणंद
जानकार	जाणकार
घानी	घाणी

अधिकांश शब्दों में 'न' का 'ण' हो जाता है परंतु सभी शब्दों में ऐसा नहीं होता। उन संयुक्ताक्षरों में जहाँ नासिक्य सुरक्षित रहता है, 'न' का 'ण' नहीं होता। --नन्नू, सोन्नो, न्हार (सिंह), पान्टो (पत्ता)।

इसी प्रकार जहाँ शब्द के प्रारंभ में 'न' वर्ण आता हो--नेम (नियम), नकट्यो (नकटा), नारेळ (नारियल), निवळो (नेवला), नुक्की (नोक), नकसो (नक्शा), नांगो (नग्न), नवाड़ (निवार)

* * *

बहुरूपिया वर्ण 'नऽ'

निमाड़ी का 'न' वर्ण बहुरूपिया है। किसी नासिक्य व्यंजन का ऐसा पंचरंगी मिजाज शायद ही किसी अन्य भाषा में हो। यह एकाक्षरी शब्द अपने मूल रूप में तो निषेधात्मक अर्थ में प्रयुक्त होता ही है, साथ ही विलंबित ध्वनि धारण करके निम्नलिखित रूपों में भी प्रयोग में आता है।

1. न = नहीं (निषेधात्मक क्रिया विशेषण)
2. नऽ = और (संयोजक समुच्चय बोधक)
3. नऽ = कर (पूर्णकालिक कृदंत)
4. नऽ = प्रत्यय रूप (बहुवचन शब्दों में)
5. नइ = ने (कर्ता कारक की विभक्ति)

1. क्रिया विशेषण के रूप में--निषेधात्मक क्रिया विशेषण के रूप में 'न' वर्ण का प्रयोग निमाड़ी में किया जाता है। यहाँ इस नासिक्य का स्वतंत्र रूप में उपयोग होता है। इस रूप में यह उपवाक्यों के आरंभ तथा मध्य में आता है-

न ऊ अवसे, न ई जासे (न वह आएगा, न यह जाएगा)
न जीमऽ, न जीमणऽ दे (न भोजन करे, न भोजन करने दे)

कभी-कभी यह 'नी' और 'नैं' या 'नईं' के रूप में भी देखने में आता है-

हऊँ तो, नी जाऊँ सासरऽ (मैं तो, नहीं जाऊँ ससुराल)
नैं रे भाई, थारी तूज जाण (नहीं रे भाई, तुम्हारी तुम ही जानो)
तोड़ी सकऽ तो थारी, नईं तो म्हारी (तोड़ सको तो तुम्हारी, नहीं तो मेरी)

2. संयोजक समुच्चय बोधक के रूप में--दो शब्दों या पदों को जोड़कर उनमें संबंध दर्शाने के लिए 'नऽ' का प्रयोग 'और' के अर्थ में किया जाता है। यहाँ इस एकाक्षरी शब्द 'नऽ' में अयोगवाही विलंबित ध्वनि मिली रहती है-

तू नऽ थारो भाई दुवई जण बंड छे (तू और तेरा भाई दोनों लोग शरारती हैं)
अल्यांग सी जाजे नऽ वल्यांग सी आवजे (इधर से जाना और उधर से आना)
बैल्या धुरा नऽ गाड़ी गेर (बैल जोत और गाड़ी हाँक)

3. अविकारी प्रत्यय (पूर्वकालिक कृदंत) के रूप में--पूर्वकालिक कृदंत बनाने के लिए, क्रिया की धातु को ईकारांत करके, उसके आगे नऽ प्रत्यय लगाया जाता है जो कि 'कर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है-

चाई-चाईनऽ, रोटी खाणू चायजे (चबा-चबाकर, रोटी खाना चाहिए)

टोंगळ्या मोड़ीनऽ बठ (घुटने मोड़कर बैठ)

भायरो दईनऽ, फुस्सड़ फेकी दीजे (बुहारा देकर, कचरा फेंक देना)

4. बहुवचन रूप बनाने के लिए--निमाड़ी में एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए 'नऽ' प्रत्यय लगाया जाता है। संज्ञा शब्द चाहे आकारांत हो, ईकारांत हो, उकारांत या ऊकारांत, सभी के अंत में नऽ प्रत्यय लगाया जाता है-

एकवचन	बहुवचन
परात (थाली)	परातनऽ (थालियाँ)
बईण (बहन)	बईणनऽ (बहनें)
गधड़ो (गधा)	गधड़ानऽ (गधों)
डोळो (आँख)	डोळानऽ (आँखों)
माकण्यो (खटमल)	माकण्यान ऽ (खटमलों)
छोरो (लड़का)	छोरानऽ (लड़कों)
डोकरी (वृद्धा)	डोकरीनऽ (वृद्ध महिलाएँ)
पोरई (लड़की)	पोरईनऽ (लड़कियाँ)
वऊ (बहु)	वऊनऽ (बहुएँ)
गाळई (गाली)	गाळईनऽ (गालियाँ)
बाछरू (बछड़ा)	वाछरूनऽ (बछड़ों)
उधई (दीमक)	उधईनऽ (दीमकों)

5. कर्ताकारक की विभक्ति के रूप में--निमाड़ी में कर्ता-कारक की विभक्ति है 'नऽ'। लोकभाषा निमाड़ी की प्रकृति के अनुरूप व्यंजन न् की वर्तनी यहाँ विलंबित 'अऽ' युक्त होकर, न् + अऽ = नऽ हो जाती है-

मनऽ काई कर्‌योज ? (मैंने क्या किया है ?)

तुमनऽ फूल तोड़्याज। (तुमने फूल तोड़े हैं।)

माळई नऽ देख्यो तो नी! (माली ने देखा तो नहीं!)

नासिक्य न/नऽ से जुड़ी कुछ भ्रांतियाँ--

इस वर्ण के प्रयोग एवं वर्तनी को लेकर कुछ भ्रांतियाँ बनी रहती हैं। कहाँ इसे जोड़कर लिखा जाए कहाँ अलग रखा जाए इस संशय ने निमाड़ी गद्य लेखन को बहुत प्रभावित किया है। इसके लिए भाषा की योगात्मकता/अयोगात्मकता (वियोगात्मकता) पर विचार करना जरूरी है। क्योंकि इसके प्रयोग के आधार पर अर्थ परिवर्तन हो जाता है--

छोरीन ऽ	- लड़कियाँ	(योगात्मक)
छोरी न	- लड़की ने	(अयोगात्मक)
छोरीनऽ न	- लड़कियों ने	(योमात्मक + अयोगात्मक)
छोरी नऽ छोरो	- लड़की और लड़का	(अयोगात्मक)
छोरी देखीनऽ	- लड़की देखकर	(योगात्मक)
न छोरी, न छोरो	- न लड़की, न लड़का	(अयोगात्मक)

हमने देखा कि अविकारी (पूर्वकालिक कृदंत) प्रयोग योगात्मक है। साथ ही बहुवचन द्योतक प्रत्यय का प्रयोग भी योगात्मक ही है। दूसरी ओर निषेधात्मक क्रिया-विशेषण तथा संयोजक समुच्चय बोधक के रूप में न/नऽ का प्रयोग अयोगात्मक है।

कर्ताकारक की विभक्ति के रूप में 'नऽ' का प्रयोग योगात्मक तथा अयोगात्मक दोनों रूपों में होता है। निमाड़ी में, सर्वनाम शब्दों में यह जोड़कर (योगात्मक या संश्लिष्ट) तथा संज्ञा शब्दों में अलग से (अयोगात्मक या विश्लिष्ट) लिखा जाता है-

सर्वनाम रूप (योगात्मक)	संज्ञा रूप (अयोगात्मक)
मनऽ (मैंने)	राम न (राम ने)
हमनऽ (हमने)	कांति न (कांति ने)
तुमनऽ (तुमने)	नानी न (बालिका ने)
ओनऽ (उसने)	गावड़ी न (गाय ने)
जेनऽ (जिसने)	कोल्ह्या न (गीदड़ ने)
कुणनऽ/केनऽ (किसने)	मांजरी न (बिल्ली ने)
एनऽ (इसने)	झाड़ न (पेड़ ने)

अपवाद--

उपर्युक्त नियम का एक अपवाद भी है। नियम है कि सर्वनाम रूप योगात्मक होते हैं परंतु अनिश्चय वाचक ईकारांत सर्वनाम 'कई' और 'कोई' के साथ कर्ता-कारक की विभक्ति को अलग से (अयोगात्मक) लिखा जाता है-

कोई न' म्हारो दुख नी जाण्यो (किसी ने मेरा दुख नहीं जाना।)

'कई'न' तो वातज नी करी (कुछ ने तो बात ही नहीं की।)

एक विसंगति--

देखा गया है कि भाषाओं में प्रायः ध्वनि, वर्तनी अथवा चलन की विसंगतियाँ पायी जाती हैं। इसके चलते अक्षरों की ध्वनि एवं वर्तनी में कभी-कभी उचित तालमेल की कमी महसूस होती है। कई बार प्रचलित रूपों का कोई भाषा-वैज्ञानिक आधार भी नहीं होता। हिंदी आदि भाषाओं के समान ही निमाड़ी में भी ऐसी स्थिति दिखाई देती है।

हिंदी के अन्य पुरुष 'वह' का एक बहुवचन कर्ता रूप 'उन्होंने' होता है, जिसका निमाड़ी पर्याय है उननऽ।

चूँकि 'उननऽ' शब्द में उन् + अ + न् + अऽ ध्वनियों का योग है और उन् के न् का उच्चारण झटके से किया जाता है। अतः 'अ' की ध्वनि लुप्त हो जाती है। उन् के बाद नऽ जुड़कर, 'उन्न' सुनाई पड़ता है। इसके अलावा नऽ की विलंबित ध्वनि जो कि पहले आए न् + अ की गूंज से मिलकर 'न' की आवृतियों का आभास देती है। परिणामस्वरूप वाक्वेग से उत्पन्न नादमय उच्चारण, वर्तनी में अशुद्धियाँ ला देता है और श्रुति के चलते वैसा ही लिख भी दिया जाता है। (यह समस्या भाषा की नहीं, समझ की है।)

शुद्ध	अशुद्ध
उननऽ	उन्नन, उन्नन, उनऽनऽ
	उन नऽ, उनन, उनऽन
उनखऽ	उन खऽ, उननखऽ, उननाख, उनऽख, उन खऽ
उनका लेणऽ	उन कालेण, उननका लेणऽ
उनकासी	उन्नका सी, उनासी, उनका सी
उनका/उनकी	उनाकी, उननका, उनऽकी

एक और विसंगति- कर्ताकारक की बहुवचन विभक्ति के प्रयोग को लेकर कुछ आलेखों और ग्रंथों में पचासों साल से भ्रमात्मक धारणा चली आ रही है। उदाहरण स्वरूप-घोड़ा नन्, लोगननऽ, चिड़ी ननऽ आदि। ये प्रयोग त्रुटिपूर्ण हैं।

ज्ञातव्य है कि आदि वचन के अधीन संज्ञा के रूप दो प्रकार से परिवर्तित होते हैं- विभक्ति रहित और विभक्ति सहित। विभक्ति रहित रूपों में बहुवचन का कोई चिह्न

नहीं होता जैसे-छोरा (लड़के), घोड़ा (घोड़े), कळस्या (लोटे) जबकि विभक्ति सहित बहुवचन बनाने के लिए निमाड़ी में 'नऽ' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे-छोरानऽ (लड़कों), घोड़ानऽ (घोड़ों), कळस्यानऽ (लोटों)।

दूसरी महत्वपूर्ण बात, विभक्ति सहित बहुवचन रूपी विकारी शब्दों में, कर्ताकारक की विभक्ति नऽ (ने) लगने से उनका रूप कुछ इस प्रकार बनता है- छोरानऽ नऽ, घोड़ानऽ नऽ।

यहाँ ध्यातव्य है कि विकारी संज्ञा शब्द छोरा के साथ जुड़कर एक ही शिरोरेखा में लिखा (संश्लिष्ट) 'नऽ' बहुवचन हेतु लगाया गया प्रत्यय है जबकि उसके बाद अलग से लिखा गया दूसरा (विश्लिष्ट) 'न ' कर्ताकारक की विभक्ति है। अतः पचासों सालों से चली आ रही यह सोच कि निमाड़ी में बहुवचन के लिए 'नन्' लगता है, भ्रामक एवं त्रुटिपूर्ण है। अव्याकरणिक है। और अधिक स्पष्टीकरण के लिए निम्न उदाहरण देखें-

कारकीय विभक्तियों का प्रयोग

एकवचन	बहुवचन		कारकीय विभक्तियों का प्रयोग		
	विभक्ति रहित	विभक्ति सहित	एकवचन	बहुवचन	
छोरो (लड़का)	छोरा (लड़के)	छोरानऽ (लड़कों)	छोरा नः (लड़के ने)	छोरानऽ नः (लड़कों ने)	कर्ताकारक
घोड़ो (घोड़ा)	घोड़ा (घोड़े)	घोड़ानऽ (घोड़ों)	घोड़ा नः (घोड़े ने)	घोड़ानऽ नः (घोड़ों ने)	कर्ताकारक
कळस्यो (लोटा)	कळस्या (लोटे)	कळस्यानऽ (लोटों)	कळस्या मः (लोटे में)	कळस्यानऽ मऽ (लोटों में)	अधिकरण कारक
चिड़ी (चिड़िया)	चिड़ीनऽ (चिड़ियाँ)	चिड़ीनऽ (चिड़ियों)	चिड़ी नः (चिड़िया ने)	चिड़ीनऽ नः (चिड़ियों ने)	कर्ताकारक
वऊ (बहू)	वऊनऽ (बहुएँ)	वऊनऽ (बहुओं)	वऊ खः (बहू को)	वउनऽ खः (बहुओं को)	कर्मकारक

* * *

प्राचीन ड-ढ तथा विकसित ड़-ढ़

निमाड़ी भाषा ने, जहाँ से जो उपयोगी मिला, उसे सहर्ष अंगीकार किया और उसे अपनी प्रकृति के अनुरूप ढाल लिया। उसने संस्कृत से प्राचीन वर्ण ड-ढ लिए और साथ ही, लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व अरबी-फारसी के प्रयोग से हिंदी में विकसित ड़-ढ़ ध्वनियों को भी बड़ी सहजता से अपनी वर्णमाला में सम्मिलित कर लिया। हिंदी की ये नवीन ध्वनियाँ, संस्कृत तथा अधिकांश भारतीय भाषाओं में नहीं हैं।

मूल रूप में ये ध्वनियाँ ट-वर्ग के अंतर्गत आती हैं। इस वर्ग में ट-ठ स्पर्श अघोष, ड-ढ स्पर्श सघोष तथा ड़-ढ़ संघर्षी उत्क्षिप्त सघोष है। ये सभी मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं। इनमें ट-ड और ड़ अल्पप्राण हैं जबकि ठ-ढ और ढ़ महाप्राण ध्वनियाँ हैं। पारंपरिक ड-ढ की तुलना में नवीन ड़-ढ़ के उच्चारण में कोमलता का आभास होता है। ये नवीन ध्वनियाँ द्विस्पृष्ट (द्विगुण) व्यंजन कहलाती हैं।

निमाड़ी में इन ध्वनियों का प्रयोग अनेक शब्दों में होता है। प्रायः ड-ढ वर्ण शब्दारंभ तथा ड़-ढ़ शब्दमध्य और शब्दांत में प्रयुक्त होते हैं।

शब्दारंभ में-- डोल (रस्सी लगी बाल्टी), डोंडी (ढिंढोरा), डाँय (दफा), डगाळ (टहनी), डाव (दाग, दग्ध), डाँवो (बायाँ), ढोर (पशु), ढोला (प्रियतम), ढोळो (मटमैला), ढेकळा (ढेला), डोचा (छिद्र), डोकरो (वृद्ध)

शब्द मध्य में-- वड़ई (प्रशंसा), गाडर (भेड़), डेडर (मेंढक), लाड़की (लाड़ली), कढ़ई (कड़ाही), घड़त (बनावट), अढ़ई (ढाई), बिढार (साजो सामान), उँढाळो (ग्रीष्म काल)

शब्दांत में-- अक्काड़ी (माचिस), निमाड़ी (लोक भाषा विशेष) मढ़ी (मठ), वाड़ी (वाटिका), गड़ी (ग्राम प्रधान की ठाँव), कड़ी (कुंडिका), लाड़ी (दुलहन), जाड़ी (स्थूलकाय), गाढी (कट्ठी)

नासिक्य ध्वनि के संयोग में--हँडवई (हाँडी), ढँई (जुए की थूनी), पांढर (सफेद), ढिंढोरो (मुनादी), उंडो (गहरा), ढाँस (छौंक का गुबार), पंडो (यात्रावल), कंडो (उपला), बंडी (बनियान)

संयुक्त व्यंजन में--खड्डो (गड्ढा), गड्डी (बंडल), गुड्डी (गुड़ियाँ), ढेढ्यो (दुल्हन का सहायक), अड्डो (ठिकाना)

विदेशी शब्दों में-- डायरी, डिगरी, डाकटर, कंपोंडर, रेडियो, बरांडो, रोड़, रबड़, पावडर

ड-ढ वर्ण युक्त निमाड़ी शब्दों की वर्तनी--

डगाळ (टहनी), डाड (दाढ़), ढेर्यो (भेंगा), डाँड (सूखा ठंठल), ढोप्पर (चूतड), ढाकणों (ढक्कन), डाँडो (डंडा), डेड (डंठल), ढोकळा (एक व्यंजन), डडूळ (भौंह), ढोळणू (उड़ेलना), डेडू (छोटा सांप), लांडई (दो मुँहा साँप), गिंडोळा (केंचुए), ढेळ (देहरी), मुंडळ्यो (खुले सिर वाला), डोफळणू (पानी के बर्तन में छपाकी मारना), भोंडलो (दाल में लगने वाला कीड़ा), रांडी (विधवा स्त्री), रांड (दुश्चरित्र स्त्री), डोळा (आँखें), डोलो (पालकी उत्सव), खांडई (तलवार), माँडणू (चित्र काढ़ना), भाँडणू (चीखकर डाँटना), मँडाणू (जानवरों के दाना-चारा परोसना), भँडाणू (सनना)

ड़-ढ़ युक्त निमाड़ी शब्दों की वर्तनी--

कीड़ी (चींटी), लाड़ी (दुलहन), काढ़ो (कषाय), खीड़ी (काठी की टोकरी), मकोड़ो (च्यूँटा), लाड़की (लाड़ली), कोढ़्यो (कोढ़ी), कढ़ी (एक व्यंजन), सुपड़ो (सूपा), वड़ई (प्रशंसा), गड़ई (निंदा), कढ़ई (कढ़ाई), कढ़ाय (कड़ाही), घट्टी चैड़नू (चक्की पीसना), देड़ (डेढ़), पढ़ई (पढ़ाई), कुरवड़ी (चावल की कुरकुरी बड़ी), पटपड़ा (पथरीला), गिरगड़ी (गिरनी), पड़छणू (दूल्हे को परखने की रीत), गड़ू (बिनपेंदी का छोटा लोटा), कड़ू (कड़वा), कैड़ो (कट्ठा), घैड़ो (रगड़), घैड़णू (घसीटना), रड़तई (रोतड़ी), एड़्यो (अल्प बुद्धिवाला), झापड़ई (बिखरे बाल वाली), गांगड़ी (गुड़ की डल्ली), धाड़ (दहाड़, भाड़ का अपभ्रंश), भाड़ (भड़भूंजे की भट्टी), दपड़ाणू (छिपा देना), अकोड़ी (अटकाने वाली कड़ी), भड़जी (कथावाचक, ब्राह्मण), टेकड़ी (टीला), रुखड़ो (घूरा), वाड़ो (बाड़ा), कड़ी (कुंडिका, कमर, गीत की पंक्ति, जंजीर की गुरिया)

* * *

व्यंजन वर्ण ब-व

चटपटे व्यंजन के शौकीनों ने मध्य भारत का 'आलू-बड़ा' यदि खाया होगा तो दक्षिण भारत का 'सांभर-वड़ा' भी अवश्य चखा होगा। दोनों में फर्क, स्वाद के अलावा, ध्वनि और वर्तनी का भी है। संस्कृत प्रभावित दक्षिण का 'वड़ा', हिंदी प्रभावित उत्तर में 'बड़ा' कहलाता है। कुछ ऐसा ही चलन, नवाब-नबाब, वड़-बड़, वाड़ी-बाड़ी, वन-बन आदि शब्दों में है।

अंतस्थ वर्ण 'व' का उच्चारण स्थान दाँत और होंठ हैं जबकि प-वर्ग के 'ब' का, दोनों होंठ। स्पर्शी 'ब' को बोलने में दोनों होंठ परस्पर चिपककर निश्वास वायु को रोकते हैं। अर्द्धस्वर 'व' सघोष संघर्षी वर्ण है जिसके उच्चारण में ऊपर के दाँत और नीचे के होंठ हल्के से स्पर्श तो करते हैं परंतु प्राण वायु शिथिलता के साथ बाहर निकल जाती है। 'ब' का उच्चारण अपेक्षाकृत सरल होने के कारण 'व' के स्थान पर 'ब' बोल दिया जाता है। वैसे भी 'व' ध्वनि मूलतः तत्सम ध्वनि है।

संस्कृत में 'ब' का प्रयोग बहुत कम होता था। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास क्रम में आते-आते संस्कृत का 'व' हिंदी आदि भाषाओं में 'ब' हो गया। यद्यपि निमाड़ी भी इसी संक्रमण काल में विकसित हुई है, परंतु उसने अपने आप को इस परिवर्तन से बचाए रखा। इसमें संस्कृत के 'व' का वजूद बरकरार है क्योंकि निमाड़ी में 'व' वर्ण की उत्पत्ति, संस्कृत के 'व' से ही हुई है। यही कारण है कि संस्कृत के 'वाद्य' और 'वधू' हिंदी में भले ही 'बाज़ा' और 'बहू' हो गए हों, परंतु निमाड़ी में ये शब्द 'वाजा' और 'वऊ' के रूप में विकसित हुए। कुछ अन्य उदाहरण भी देखिए-

प्रचलित (बकार) शब्द	निमाड़ी (वकार) रूप	प्रचलित (बकार) रूप	निमाड़ी (वकार) रूप
बात	वात	बरखा	वरसा
बरसना	वरसणू	बरात	वरात
बाट	वाट	बाँटना	वाटणू
तालाब	तळाव	बाँसी	वासी
बाँस	वास	बाली	वाळई

बार	वारी	चबाना	चावणू
बड़ा	वड़ा	बड़ी	वड़ी
बड़ाई	वड़ई	बाड़ो	वाड़ो
बाना	वानो	बहू	वऊ
बंदरी	वाँदरी	बनिया	वाण्यो
बादल	वादळा	बाजा	वाजा
बजाना	वजाड़णू	अब	अवँ
जब	जवँ	तब	तवँ
कब	कवँ	बाँका	वाको
बड़	वड़	बछड़ा	वाछरू

ऐसा भी नहीं है कि निमाड़ी में 'ब' ध्वनि का अभाव है, या फिर हिंदी की प्रत्येक 'ब' ध्वनि निमाड़ी में 'व' हो जाती है। संस्कृत और हिंदी के ऐसे कई शब्द हैं जिनकी 'ब' ध्वनि निमाड़ी में सुरक्षित है-

बिंदी-बिंदी, दुबला-दुबळो, बैल-बईल, बाण-बाण, ब्राह्मण-बामण, बहन-बईण,

ध्वनि परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन--

कुछ शब्द निमाड़ी में ऐसे भी हैं जिनमें 'व' के स्थान पर 'ब' होने से अर्थ परिवर्तन हो जाता है। ये शब्द निमाड़ी के अपने देशज शब्द हैं--

वाको (टेढ़ा)	बाको (चुम्बन)
वाट (राह, प्रतीक्षा)	बाट (मीठी दलिया)
वाटो (हिस्सा, भाग)	बाटो (लिट्ट, चूरमे का रोट)
वोट (चुनावी मत)	बोट (अंगुली का अग्र भाग)
वयड़ी (बहू)	बयड़ी (टेकड़ी)
वाटी (कटोरी)	बाटी (लिट्टी)
वाळणू (दिशा मोड़ना)	बाळणू (आग में जलाना)
कावरी (परेशान)	काबरी (चितकबरी)
गावड़ो (खेड़ा)	गाबड़ो (गला)

वड़ो (वड़ा)	बड़ो (बड़ा)
कवाड़ो (कहावत)	कबाड़ो (कबाड़ा)
वन्नी (ओढ़नी)	बन्नी (दुल्हन)

'व' ध्वनि युक्त, निमाड़ी के कुछ अनेकार्थी शब्द--

वासी-	1. बासी	2. निवासी	
वात-	1. वात (बात)	2. वात रोग	
वार-	1. बार या दफा	2. दिन	3. विलंब, समय
वैर-	1. शत्रुता	2. गर्म पानी में दाल/दलिया डालना	
वाट-	1. प्रतीक्षा	2. बँटवारा	3. तौल के बाट
वाटनू-	1. बाँटना	2. सील बट्टे पर पीसना	
वाळई-	1. कान की बाली	2. संबंधसूचक अवयव	
वरस-	1. वर्ष	2. बरसे	
ताव-	1. आवेश, रोष	2. बुखार, ताप	3. आँच।

* * *

श्रुतिमूलक य-व

पारंपरिक अंतरथ वर्ण य और व श्रुति मूलक ध्वनियाँ हैं। इनके कुछ रूपों के उच्चारण अन्य स्वर ध्वनियों से साम्य रखते हैं। इस कारण वैकल्पिक वर्तनी की समस्या उत्पन्न हो जाती है। 'ये' का उच्चारण 'ए', 'वा' का 'आ' तथा 'यी' का उच्चारण 'ई' सुनाई पड़ता है। इस तरह समस्या खड़ी हो जाती है कि 'हुवा' सही है या 'हुआ', 'हुयी' या 'हुई', 'हुये' या 'हुए'। 'कौवा' लिखें या 'कौआ', 'कुँवा' या 'कुँआ'। यहाँ उच्चारण में कोई खास कठिनाई नहीं होती परंतु श्रुति भ्रम से लेखन में अशुद्धियाँ होती हैं। कोई श्रुति मूलक वर्णन लिखता है तो कोई स्वर मूलक। हालाँकि व्याकरण के सिद्धांतों में इसका समाधान है परंतु नियमों और अपवादों के मार्ग-संकेतों से भी कभी जनभाषा का सैलाब नियंत्रित किया जा सका है।

निमाड़ी की ध्वनियों में श्रुतिमूलक समस्या नाममात्र की है। अधिकांश शब्दों की बनक ही कुछ ऐसी है कि इनमें श्रुतिमूलक समस्या स्वतः समाप्त हो जाती है-

पारंपरिक रूप		निमाड़ी रूप
वैकल्पिक (शुद्ध) रूप	श्रुतिमूलक (अशुद्ध) रूप	उच्चारण-वर्तनी की एकरूपता
नए	नये	नवा
नई	नयी	नवी
हुआ	हुवा	हुयो
कुँआरी	कुँवारी	क्वारी
किए	किये	कर्‌या
कथाएँ	कथायें	कथानऽ
गेरुआ	गेरुवा	गेरुवो
कुँआर	कुँवार	क्वार
सुअर	सुवर	सोयड़ो
चाहिए	चाहिये	चायजे
कमाई	कमायी	कमई
लिखाई	लिखायी	लिखई
हलवाई	हलवायी	हलवई

मिठाई	मिठायी	मिठई
देखिए	देखिये	देखो
आओ	आवो	आव/आओ
माताएँ	मातायें	मायनऽ
लिए	लिये	लेणऽ
आएगा	आयेगा	आवऽगा
नदिओं	नदियों	नद्दीनऽ
पिओ	पियो	प्यो/पिओ
जाओ	जावो	जाव/जाओ
नहाओ	नहावो	न्हाव/न्हाओ
कछुआ	कछुवो	काब्जो
धुआँ	धुवाँ	धुओं
पधारिए	पधारिये	पधारो
आईए	आईये	आओ
कराएगा	करायेगा	कराड़ऽगा

निमाड़ी में ऐसे शब्दों की संख्या अत्यल्प है, जिनमें य-व अंतस्थ व्यंजनों का प्रयोग श्रुति में विकल्प के रूप में होता है। अतः नियमों, अपवादों में न उलझते हुए उचित यही लगा कि जहाँ भी इन श्रुति मूलक ध्वनियों को विकल्प में प्रयोग होने की स्थिति बने, वहाँ वर्तनी में केवल स्वर का ही प्रयोग किया जाए। यथा-

वैकल्पिक (शुद्ध) रूप	श्रुतिमूलक (अशुद्ध रूप)	निमाड़ी रूप
कुँआ	कुँवा	कुओ
कुँए	कुँये	कुआ
कुँओं	कुँवों	कुआनऽ
कौआ	कौवा	कौओ
कौए	कौये	कौआ
कौओं	कौवों	कौआनऽ
कुँअर	कुँवर	कुअर

* * *

'र' के रूप

इस अंतस्थ वर्ण के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग ऊपर के मसूड़ों को बार-बार तीव्रता से स्पर्श करता है। यह लुंठित, वर्त्स्य घोष, अल्पप्राण ध्वनि है। इसकी स्थिति अन्य व्यंजनों से कुछ अलग है। यह अन्य वर्णों से मिलकर अनेक रूप धारण करता है। निम्न प्रोक्ति देखिए-

कक्षा शिक्षक ने प्राचार्य को बताया कि बार-बार सचेत करने के बावजूद आज भी चित्रा, प्रेमा, अर्जुन, श्रेया, धृतराष्ट्र, ऋतु और चारु श्रमदान करने नहीं आए।

ध्यातव्य है कि शिक्षक द्वारा बताए गए विद्यार्थियों के नाम रूपी संज्ञा शब्दों में 'र' वर्ण के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक नाम की वर्तनी में, स्वर सहित अथवा स्वर रहित 'र', अन्य व्यंजनों से मिलकर भिन्न-भिन्न आकृतियों में दिखाई दे रहा है।

1) स्वर सहित 'र' के रूप

स्वर सहित 'र' अर्थात् पूरा 'र' (र् + अ = 'र') जब किसी अन्य व्यंजन से मिलता है तो उसके निम्न रूप बनते हैं-

(क) आधे 'त' (त्) के साथ स्वर युक्त (पूरा) 'र' (त् + र + अ = त्र) का रूप-- दरअसल प्रचलित 'त्र' वर्ण की सही वर्तनी 'त्र' होनी चाहिए परंतु हिंदी मानकीकरण समिति की मान्यता के बावजूद 'त्र' को 'ल' का भ्रम तथा लेखन की असुविधा के चलते 'त्र' रूप ही प्रयुक्त होता है। निमाड़ी में भी अपने एक मात्र संयुक्त व्यंजन 'त्र' की ध्वनि को तो मान्यता मिली हुई है परंतु वर्तनी में इसके 'त्र' के अलावा कुछ अन्य रूप भी प्रचलित हैं, जो कि निमाड़ी के देशज शब्द हैं। दोनों ही रूप इस लोकभाषा में मान्य हैं-

घटकवर्ण	प्रचलित (निमाड़ी में भी मान्य)	निमाड़ी के मानक
प + त् + र	पत्र	चिट्ठी
इ + त् + र	इत्र	अतर
कु + त् + रा	कुत्रा	कुतरा
ज + त् + राँ	जत्राँ	जतराँव
पु + त् + र	पुत्र	पूत/छोरो
त् + रा + स	त्रास	तरास
त् + र + इ + कोण	त्रिकोण	तिरकोण/तिरखुट

मं + त् + र	मंत्र	मंतर
शिव + रा + त् + र + ई	शिवरात्री	सिवरात
गाय + त् + र + ई	गायत्री	गायतरी

(ख) आधे ट (ट्) तथा आधे ड (ड्) के साथ पूरे 'र' के रूप--

घटकवर्ण	प्रचलित (निमाड़ी में भी मान्य)	निमाड़ी मानक रूप
ट् + र + ए + न	ट्रेन (टरेन)	रेल
ड् + र + म	ड्रम (डरम)	कोठी, कंसरो, राँजण
ड् + रा + मा	ड्रामा (डरामो)	नाटक
ट् + रंप	ट्रंप (टरंप)	तुरुप
ड् + र् + ए + स	ड्रेस (डरेस)	पेरावो

(ग) आधे श (श्) के साथ पूरे 'र' का रूप--

श् + र + ई	श्री	सिरी
श् + र + वण	श्रवण	सरवण
श् + र + द् धा	श्रद्धा	सरधा
श् + रा + द् ध	श्राद्ध	सराध
श् + रा + प	श्राप	सराप

(घ) अन्य वर्णों के साथ 'र' के रूप--अन्य स्वर रहित व्यंजनों के साथ, स्वर सहित 'र' मिलकर जो रूप बनते हैं, उन्हें निमाड़ी में कुछ अलग देसी अंदाज में बोला और लिखा जाता है।

घटकवर्ण	प्रचलित रूप	निमाड़ी मानक रूप
च + क् + र	चक्र	चक्कर
शु + क् + र + वार	शुक्रवार	सुक्करवार
सं + क् रांति	संक्रांति	सँकरात
उ + म् + र	उम्र	उम्मर
भ् + र + म	भ्रम	भरम
व् + र + त	व्रत	वरत
ब्र + र + श	ब्रश	बुरुस
प् + रा + र् + थना	प्रार्थना	पराथना/पिराथना
भ् + र + म + र	भ्रमर	भौरो

प् + र + थम	प्रथम	पयलो
प्र + र + ति + दिन	प्रतिदिन	दरोज

2. स्वर रहित (आधा) र के रूप--

हिंदी में, स्वर रहित र (र्) जब किसी अन्य व्यंजन से संयोग करता है तो उसकी वर्तनी एक विशेष चिह्न के रूप में शिरोरेखा के ऊपर लगती है जिसे हम 'र' की रेफ कहते हैं। निमाड़ी में 'र' की रेफ का प्रयोग वर्जित तो नहीं है परंतु इसकी जगह शब्दों को देसी अंदाज में बोला और लिखा जाता है।

घटक वर्ण	प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप
ध+र्+म	धर्म	धरम
क+र्+म	कर्म	करम/काम
स+र्+द	सर्द	सरद/ठंडो
ग+र्+म	गर्म	गरम/तातो
मु+हु+र्+त	मुहुर्त	म्होरित
आशी+र्+वाद	आशीर्वाद	आसिरवाद
व्य+र्+थ	व्यर्थ	बेकार/अकारथ
ब+र्+तन	बर्तन	बासण/भाँडा
व+र्+षा	वर्षा	वरसात
मु+र्+गा	मुर्गा	मुरगो/कुकड़ो
अ+र्+जी	अर्जी	दरखास/अरजी
स्व+र्+ग	स्वर्ग	सरग

3. र का रु रूप--'र' में छोटा 'उ' की मात्रा लगाने से 'र' का यह (रु) रूप बनता है-

अरु (और), रुप्यो (रुपया), चरु (लंबे मुँह वाला छोटा लोटा), रुखड़ो (घूरा), जुरुँग (गुंजा के बीज), हरुणी (थकान, आलस्य), रुसवई (बदनामी), रुळंता (लटकते/झूलते हुए)

4. र, रि तथा ऋ--

र में छोटी इ की मात्रा लगाने से र का 'रि' रूप बनता है, जिसका उच्चारण ऋ से साम्य रखता है। र एक व्यंजन है जबकि ऋ, स्वर है। र का रि रूप ह्रस्व है, ऋ ध्वनि भी ह्रस्व है। दोनों की ध्वनि में समानता होने के कारण अशुद्धियाँ होती रहती हैं।

निमाड़ी लोकभाषा इन त्रुटियों से अछूती है। ऋ वर्ण निमाड़ी में न होने की वजह से इससे जुड़ी अशुद्धियाँ, वर्तनी में, स्वतः समाप्त हो जाती हैं। उच्चारण में, निमाड़ी में, ऋ की ध्वनि अवश्य है जिसे इस लोकभाषा ने अपने देसी अंदाज में अपनाया है। परिणामस्वरूप निमाड़ी में इस ध्वनि को जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा भी जाता है-

ऋ का प्रचलित रूप	इनके निमाड़ी रूप
ऋषि	रिसी
ऋद्धि	रिद्धी
ऋतुमती	रितुवती
ऋण	रिण
ऋषि पंचमी	रिसी पाँचों
ऋ की मात्रा युक्त शब्द	**इनके निमाड़ी विकल्प**
कृपा	किरपा
दृष्टि	निघा/दीदो
शृंगार	सिंगार
वृद्ध	डोकरो
मृत्यु	मउत
कृषक	किरसाण
गृध्र	गीध
शृगाल	कोल्ह्यो

* * *

विशिष्ट ध्वनि 'ळ'

निमाड़ी की विशेष ध्वनि 'ळ' की यात्रा बड़ी रोचक है। भारोपीय भाषा परिवार की भारतीय शाखा में इस वर्ण ने सर्वप्रथम वैदिक भाषा में अपनी उपस्थित दर्ज कराई। ऐसा प्रतीत होता है कि यह वर्ण द्रविड़ परिवार की भाषाओं से वैदिक संस्कृत में पहुँचा है। इसका उल्लेख लौकिक संस्कृत में नहीं है। वैदिक के पश्चात यह वर्ण पाली, प्राकृत शौरसेनी से चलकर पश्चिमी हिंदी की निमाड़ी लोकभाषा तक पहुँचा है। निमाड़ी के अलावा यह 'ळ' ध्वनि आधुनिक भारतीय आर्यभाषा समूह की मराठी, कोंकणी, सिंधी, पंजाबी, पश्चिमोत्तर खड़ीबोली, कुमायुँनी, गढ़वाली, राजस्थानी, बांगरू, गुजराती, मेवाड़ी, मारवाड़ी, भीली तथा सोंधवाड़ी में भी प्रयुक्त होती है। इनके अलावा पूर्व में उड़िया तथा दक्षिण की तेलुगू, कन्नड़, तमिल एवं मलयालम में भी ळ ध्वनि मिलती है।

संभवतः चार हज़ार वर्ष पूर्व द्रविड़ में ड और ढ ध्वनियाँ थी जो कि 1500 वर्ष ई. पू. द्रविड़ से वैदिक संस्कृत में पहुँची। द्रविड़ों द्वारा बोली जानेवाली पैशाची में ल् के स्थान पर ळ का प्रयोग किया जाता था। लगभग 3500 वर्ष पूर्व मध्य स्वर ड् और ढ् ऋग्वेद में ळ् और ळह् हो गए। लौकिक संस्कृत में ळ ध्वनि लेखन में लुप्त हो गई। पाली में ठ के स्थान पर ळ का प्रयोग होने लगा था। जबकि प्राकृत में यह ध्वनि ल् से विकसित हुई थीं।

प्राकृत से अपभ्रंश भाषाओं में होते हुए यह ध्वनि प्राचीन हिंदी, खड़ी बोली तथा हिंदी की अनेक पश्चिमोत्तर बोलियों में समाई हुई है, पर दक्षिण पूर्व में इसका अभाव है। इस प्रकार इस ध्वनि की एक लंबी परंपरा है, परंतु प्राचीन भाषाओं की, लौकिक संस्कृत में तथा आधुनिक भाषाओं की, परिनिष्ठित हिंदी में, इस वर्ण ने अपनी जगह नहीं बनाई है।

उच्चारण की दृष्टि से ळ, अघोष, पार्श्विक, अल्पप्राण मूर्धन्य ध्वनि है। इसको बोलने में, स्वरतंत्रियों में गूंज नहीं होती। जीभ श्वासवायु के मार्ग में खड़ी हो जाती है, जिससे उच्चारण में प्राणवायु की कम मात्रा लगती है। स्वरों और व्यंजनों के बीच में स्थित होने के कारण 'ळ' को अंतस्थ वर्णों की श्रेणी में रखा गया है।

ध्वनि और रूप-रचना में परिवर्तन के साथ निमाड़ी में कई जगहों पर 'ल' के स्थान पर 'ळ' का प्रयोग होता है। यही तो इस लोकभाषा की विशेषता है कि इसमें इन दोनों ध्वनियों का उपयोग होता है। 'ळ' का प्रयोग शब्दारंभ में नहीं होता है, शब्दमध्य, शब्दांत तथा उपांत्य में इसका प्रयोग निमाड़ी में बहुतायत से होता है-

1. अकारांत शब्दों में 'ळ' का प्रयोग--निमाड़ी के अधिकांश अकारांत शब्दों में ल के स्थान पर ळ का प्रयोग होता है, परंतु इसका अपना भी अस्तित्व है-

डगाळ (डाल, टहनी)	गंगाळ (ताम्र कंडाल)
रमझोळ (पायल)	टोळ (गोल पत्थर)
भोळ (घुमड़ी)	अमोळ (कच्चे आम की सूखी फाँकें)
गोळ (गोल)	घोळ (घोल)
धुक्कळ (धुआँ)	काजळ (काजल)
साळ (धान)	काळ (काल)
डडुळ (भौंह)	पळाळ (चाँवल की घास)

2. आकारांत शब्दों में 'ळ' का प्रयोग--

चाकळा (चौड़ा, फैला हुआ)	भोळा (भोला)
मोकळा (लंबा-चौड़ा, विस्तृत)	माळा (माला)
डोळा (आँखें)	गिंडोळा (केंचुएँ)
सोळा (सोलह)	धवळा (सफेद)
खोळा (आँचल)	चाळा (ढोंग)

3. ओकारांत शब्दों में 'ळ' का प्रयोग--

उंढाळो (ग्रीष्मकाल)	स्याळो (शीतकाल)
मोळो (हल्का खट्टा)	निवळो (नेवला)
डोळो (आँख)	नाळो (नाला)
आळो (ताक)	बाळो (नन्हा बालक)
जाळो (जाल)	काळो (काला)
धुळ्ळो (धूल)	कुळ्ळो (कुल्ला)
वळ्ळो (अनाज का छिलका-भूसी)	

4. उपांत्य वर्ण के स्थान में 'ळ' का प्रयोग--शब्द में उपांत्य वर्ण के रूप में 'ळ' का प्रयोग प्रायः ईकारांत शब्दों में होता है-

टोकळई (छोटी चुहिया)	छावळई (परछाई)
लिमोळई (निंबौरी)	कावळई (चूड़ियाँ)
काचकई (चोली)	कापळई (छोटा चमगादड़)
इळ्ळई (इल्ली)	पावळई (बाँसुरी)
ढळ्ळाट (दहाड़-मारकर रोना)	वळ्होळ (सेमा-फली)

5. शब्द मध्य में 'ळ' का प्रयोग--

बळतन (ईंधन, जलावन)	बाळतेण (प्रसूता)
वळतेण (परनाली)	खळबत्तो (इमामदस्ता)
धूळ-धाणी (धूल-धूसरित)	गळतखोर (कोढ़)
टोळई (महुए का फल)	दाळ्या (भूने चने)
गोळ-गिरिंग (गोल, वृत्ताकार)	जळवाय ('जल-वायु पूजन' संस्कार)
फाळक्यो (पोतड़ा, डाईपर)	जळकुकड़ी (ईर्ष्यालु स्त्री)
चोळई (अंगिया)	साळई (साली)
ताळई (ताली)	नाळई (नाली)
बाळणू (जलाना)	हळणू (हलना)
पळचावणू (प्रज्वलित करना)	जाळ्यो (गवाक्ष)
टोळ्या (पोर)	पळाळ (पलाल)
भरकोळ्हो (भूरा कद्दू)	बोळबोळ (लबालब)

ल और ळ के भिन्नार्थी प्रयोग--

निमाड़ी के कुछ शब्दों में एक ही स्थान पर ल और ळ वर्ण का वैकल्पिक प्रयोग देखने में आता है परंतु उनके अर्थ अलग-अलग होते हैं-

साल (वर्ष)	साळ (धान)
आलो (भीगा हुआ)	आळो (ताक)
गलती (भूल, त्रुटि)	गळती (अभिषेक)
पोलो (खोखला)	पोळो (बैलों का पर्व)
डोलो (पालकी-पर्व)	डोळो (आँख)
पालो (पत्तियों की घास)	पाळो (सिंचाई की पाल)
बाल (केश)	बाळ (बालक)
भलई (भलाई)	भळई (बलाही-जाति)

ढोल (एक बाजा)	ढोळ (उड़ेलने की प्रक्रिया)
सालो (एक गाली)	साळो (पत्नी का भाई)
चाल (गति)	चाळ (चाल)
चाकलो (पहिया)	चाकळो (फैला हुआ)
मोकलो (आज़ाद करना)	मोकळो (लंबा-चौड़ा)

* * *

उष्म वर्ण स-ह

निमाड़ी में दो उष्म व्यंजन हैं--स और ह, इनकी उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। दोनों उष्म संघर्षी व्यंजन हैं। इनके उच्चारण में निश्वास मुख अवयवों से रगड़ खाकर, उष्म होकर बाहर निकलती है। दोनों ध्वनियाँ महाप्राण हैं परंतु नाद के आधार पर दोनों में अंतर है। 'स' के उच्चारण में स्वर तंत्रियों में कंपन होता है, यह सघोष ध्वनि है जबकि 'ह' अघोष ध्वनि है।

पारंपरिक उष्म व्यंजनों में से श-तालव्य, ष-मूर्धन्य और स-दंत्य ध्वनियाँ हैं। 'श' सामान्यतया संस्कृत, फारसी, अरबी और अंग्रेज़ी शब्दों में पाई जाती है। ष का प्रयोग प्रायः संस्कृत के तत्सम शब्दों में होता है। हिंदी में ष का चलन लुप्त होता जा रहा है। हिंदी की अन्य बोलियों में भी श-ष का स्थान स ने ले लिया है। निमाड़ी ने आरंभ से ही अपनी प्रकृति और सरलता की ओर चलते हुए श और ष की ध्वनियों को स में समेकित कर लिया है। परिणामस्वरूप निमाड़ी में श और ष के लिए कोई स्थान नहीं है।

दंत्य स की ध्वनि बहुत सरल है, जबकि श-ष का उच्चारण कठिन पड़ता है। हिंदी में श-ष के स्थान पर 'स' का उच्चारण कर दिया जाता है किंतु लेखन में इनका मूल रूप बरकरार रखा जाता है, परिणामस्वरूप ध्वनि और वर्तनी का तालमेल गड़बड़ा जाता है। इसके चलते भाषा में अशुद्धियाँ होती रहती हैं। निमाड़ी में ऐसी कोई समस्या नहीं है, इसमें ध्वनि और वर्तनी निर्विवाद है--जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा भी जाता है।

श का स में रूप परिवर्तन--

हिंदी के तालव्य 'श' का निमाड़ी के दंत्य स में बड़ी ही सहजता से परिवर्तन हुआ है। अधिकांश शब्दों में तो श के स्थान पर स लिखने से ही काम चल जाता है जैसे शरीर को सरीर, वर्ष को वरस, जबकि कुछ श युक्त प्रचलित शब्दों के लिए निमाड़ी में समानार्थी देशज शब्द मौजूद हैं। जैसे प्रशंसा के लिए वड़ई, प्रकाश के लिए उजाळो आदि।

श ध्वनियुक्त शब्द तथा इनके निमाड़ी रूप

शाम	संजा	कुशल	कुसल
शस्त्र	हथियार	श्लोक	सिलोक
शरीर	सरी/सरीर	शुक्र	सुकर
शास्त्र	सास्तर	नाश	नास
शुक्ल	सुकुल	विश्व	दुनिया
शुक्रवार	सुक्करवार	शुक्रतारा	हगर्‌यो तारो
मंशा	इरादो/मंसा	प्रश्न	सवाल
देश	देस	शिशु	बालुड़ो
पशु	पसु/ढोर	शारदा	सारदा
शुक	मिट्ठू/होर्‌यो	शब्द	सबद
शाक	स्याक	प्रकाश	परकास/उजाको
आकाश	अकास	श्वेत	धवळो
प्रशंसा	वड़ई	दर्शन	दरसन
अवकाश	छुट्टी	अवश्य	जरूर
श्याम	सावळो	केशर	केसर

मूर्धन्य ष का स में रूप परिवर्तन--

संस्कृत के ष वर्ण का प्राकृत में ही रूप परिर्वन हो चुका था। हिंदी में भी उसे केवल संस्कृत के तत्सम् शब्दों में ही स्थान प्राप्त था। निमाड़ी में यह प्राकृत और शौरसेनी से चलकर अपने परिवर्तित रूप में ही आया है। उसकी इस यात्रा के दौरान ग्रंथों में, रामायण में तथा संत-साहित्य में हमें ष के बदलते हुए रूप दिखाई पड़ते हैं। जैसे-पाषाण से पासाण, हर्ष से हरख, लक्ष्मण (ल+क्+ष्+मण) से लखन, षट से छट, अष्ट से अट्ठ, आठ आदि।

निमाड़ी ने ष के परिवर्तित स, ख और ट तीनों रूपों को अपनाया है। इनके अलावा ष ध्वनि युक्त शब्दों के निमाड़ी में अपने कुछ समानार्थी शब्द भी हैं।

प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप	प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप
भाषा	भासा	कृषि	खेती
अषाड़	असाड़	उष्ण	गरम
ऋषि	रिसी	कृषक	किरसाण

उष्म	तातो	उष्मा	ताव
हर्ष	हरख	ग्रीष्मकाल	उंढाळो
अभिलाषा	अभिलासा	कोषागार	खजानो
वर्ष	वरस	राष्ट्र	देस
पृष्ठ	पीट/पूट	श्लेष्मा	खकार/कफ
संतुष्ट	टुटमान (तुस्टमान)षट्		छे/छौ/छव
षष्टि	साट	षष्ट	छह
ज्येष्ठ	जेट/मोठा	पृष्ठ	पन्नो
अंगुष्ठ	अंगठ्यो	दोष	बुरई
शुष्क	सूखो	पौष	पूस
वर्षा	वरसात	षोडस	सोळा

ह का बदलता मिजाज--

इस संघर्षी महाप्राण वर्ण का उच्चारण स्थान कंठ तथा जीभ का पश्च भाग है। निमाड़ी में उच्चारण की दृष्टि से यह ध्वनि विशेष रूप से विचारणीय है। जब यह ध्वनि शब्दारंभ में आती है तो इसमें कोई विकार नहीं होता--हमारा, हो:र्यो, हिरणी। किंतु मध्य और अंत में आने पर, अधिकांश शब्दों में इसका रूप कई तरह से बदलने लगता है-

(क) हकारांत का आकारांत/विलंबित अऽ रूप--

प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप	प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप
बारह	बारा/बारऽ	निगाह	निघा
तेरह	तेरा/तेरऽ	जगह	जगा
चौदह	चौदा/चौदऽ	बारहवाँ	बारवों
पंद्रह	पंध्रा/पंध्रऽ	तेरहवाँ	तेरवों
सत्रह	सत्रा/सतरऽ	परवाह	परवा

(ख) ह का य-व रूप--

विवाह	याव	पाहुना	पावणा
पहला	पयलो	शहर	सयर
कहा	कयो	बहरा	भयरो

	बुहारी	भायरी	कहना	कयणू
	पहला	पयलो	ठहरो	ठयरो

(ग) ह का ह्य रूप--

गहना	गह्यणो	सहना	सह्यणू
रहना	रह्यणूं	यहाँ	ह्याँ
पहरा	पह्यरो	गहरा	गह्यरो

(घ) हकार का लोप--

बहन	बईण	दहशत	धैसत
तुम्हारा	थारो	राह	रस्तो
शहनाई	सैनई	सहेली	सएली
ब्राह्मण	बामण	काँजी-हाउस	काँजोस
बहुत	भौत	पहाड़ा	फाड़ा
कहीं	कई	दही	धई

(च) कुछ स्थान वाचक विशेषण शब्दों के अंत में ह का लोप होकर उनके स्थान पर अनुनासिक स्वर, पूर्ण स्वर में मिल जाता है--

प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप	प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप
वहाँ	वाँ	यहाँ	याँ
जहाँ	जाँ	कहाँ	काँ

(छ) महाप्राण ह का जब नासिक्य न एवं म् अथवा अंतस्थ ल से संयोग होता है तो न्ह, म्ह अथवा ल्ह ध्वनियाँ निर्मित होती हैं। इनके उच्चारण की एक विशेषता यह है कि इसमें ध्वनि एक स्थान पर नहीं रह पाती है। परिणामस्वरूप संयोग द्वित्व वाले व्यंजन को दुहराना पड़ता है-

वन्ही (वन् न्ही) ओढनी, वल्हर (वल् ल्हर) सेमा, पन्हाणू (पन् न्हाणू), विवाहित होना, वन्हा (वन् न्हा) कपड़े, पन्हो (पन् न्हो) अरज, उन्हाळो (उन् हाळो) ग्रीष्म काल, तुम्हारो (तुम् म्हारो) तुम्हारा।

(ज) न्ह, ल्ह, म्ह ध्वनि युक्त शब्द--

न्हार (शेर)	चूल्हो (चूल्हा)	म्हारो (मेरा)
कान्हो (कन्हैया)	कोल्ह्यो (गीदड़)	म्होरित (मुहुर्त)
न्हावणू (नहाना)	वल्होळ (सेमा)	चम्हार (चर्मकार)

वन्हा (कपड़े) कोल्हाट (गुलाटी) बाम्हण (ब्राह्मण)
पन्हा (पनहा) मुल्यो (आधा पाव की माप) पोम्हाळणू (सहलाना)

(झ) ण्ह, र्‌ह, य्ह, व्ह, ह्य ध्वनि युक्त शब्द--

अण्हाण (अदहन), कर्‌हाँजणू (कराहना), य्हाँ (यहाँ), व्हाँ (वहाँ), रह्यणू (रहना), गर्‌हाणो (दोषारोपण), व्हाण (आदत)

* * *

प्राणीकरण

परिवर्तन, जीवित रहने का एहसास है। जो भाषा लोकरुचि में परिवर्तनों को अपनाती है, समय के साथ ध्वनि और रूप तत्वों से आत्मा और कलेवर को सजाती-संवारती रहती है, वह लोगों की वाणी पर सदैव जीवित रहती है। निमाड़ी लोकभाषा आरंभ से ही परिवर्तनशील रही है। स्वर ध्वनियों में परिवर्तन के साथ निमाड़ी व्यंजनों में भी महाप्राणीकरण, अल्पप्राणीकरण, घोषीकरण, उष्मीकरण, अंतस्थीकरण, वर्ण-विपर्यय व्यंजनागमन, व्यंजनलोप इत्यादि परिवर्तन होते रहे हैं। इनमें प्राणीकरण ने निमाड़ी की प्रकृति को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

महाप्राणीकरण--गेहूँ का 'ग' और दोपहर का 'प' क्रमशः क-वर्ग और प-वर्ग के अल्पप्राण वर्ण हैं जोकि निमाड़ी में महाप्राण 'घ' और 'फ' के रूप में मिलते हैं, परिणामस्वरूप गेहू का घउँ और दोपहर का दुफार हो जाता है। इसी प्रकार दुहरा को धुयरो, कंधा को खाँदो बोला और लिखा जाता है। निमाड़ी में ऐसे अनेक उदाहरण हैं-

परिवर्तन	प्रचलित अल्पप्राण	निमाड़ी महाप्राण
क-वर्ग	कंधा	खांदो
(क से ख तथा	कमी	खामी
ग से घ)	कील	खीली
	वक्त	बखत
	इकट्ठा	एखट्टो
	गेहूँ	घउँ
	गुस्सा	घुस्सो
	निगाह	निघा
	गहना	घयणो
	गागर	घागर
च-वर्ग (ज से झ)	जूठा	झूटो
	पिंजरा	पिंझरो
	जहाँ	झाँ

ट-वर्ग (ड से ढ तथा	डंगर	ढोर
ट से ठ)	डँसना	ढसणू
	कडाही	कढ़ाय
	पटरा	पाठो
	डूँगर (टीला)	ढाटो
त-वर्ग (त से थ तथा	तेरा	थारो
द से ध)	स्तन	थान
	दुहना	धुवणू
	दहाड़	धाड़
	दही	धई
	दहकना	धधकणू
	दिहाड़ी	धाड़की
प-वर्ग (प से फ तथा)	पत्थर	फत्तर
ब से भ)	पुतली	फुतळेण
	पुतला	फुतळ्यो
	दोपहर	दुफार
	उपर	उफरऽ
	तड़पना	तड़फणू
	बाहर	भायरऽ
	चाबी	चाभी
	बाँह	भाँव/भावटी
	बहरा	भयरो
	बहादुर	भादुर
	बुरका	भुरको
	बलाही	भळई

अल्पप्राणीकरण--वर्गीय व्यंजनों की महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राण में परिवर्तित होना निमाड़ी की विशेषता है। अल्पप्राणीकरण के उदाहरण शब्दों के मध्य और अंत में अधिक मिलते हैं।

परिवर्तन	प्रचलित महाप्राण	निमाड़ी अल्पप्राण
क-वर्ग	भूख	भूक
(ख से क तथा	कोख	कोक
घ से ग)	सुख	सुक
	तख्त	तकत
	काँख	काक
	भिखारी	भिकारी
	सूखा	सूको
	धोखा	धोको
	खोखला	खोकळो
	घाघरा	घागरो
	घुँघरू	घुँगरू
	सिंघासन	सिंगासण
	कंघा	कंगो
च-वर्ग	छलनी	चाळणी
(छ से च तथा	छानना	चाळणू
झ से ज)	समझ	समज
	सांझ	संजा
	झंझट	झंजट
	समझौता	समजौतो
ट-वर्ग	पीठ	पूट
(ठ से ट	आठ	आट
ढ से ड तथा	हठ	हट
ढ़ से ड़)	ठाठ	ठाट
	झूठ	झूट
	होंठ	होट
	छठ	छट
	हट्ठा-कट्ठा	हट्टो-कट्टो
	ढूँढ़ना	ढूँडणो

	मेंढक	मेंडक
	गड्ढा	खड्डो
	साढू	साडू
	डेढ़	देड़
	असाढ़	असाड़
	चढ़ना	चैड़णो
	दाढ़ी	डाड़ी
त-वर्ग	हाथ	हात
(थ से त तथा	साथ	सात
ध से द)	हाथी	हत्ती
	हथेली	हतळई
	कोथमीर	कोतमीर
	हथौड़ी	हतौड़ी
	दूध	दूद
	साधू	सादू
	साधा	सादो
	आधा	आदो
	कंधा	खाँदो
	धंधा	धंदो
	धुंध	धुंद
प-वर्ग	फूफाजी	फूपाजी
(फ से प तथा	फफूँद	फपूँद
भ से ब)	फड़फड़ाना	फड़पड़ाणो
	सफाचट	सपाचट्ट
	हिफाजत	हिपाजत
	भारीभरकम	भारीबद्द

* * *

श्र-क्ष-ज्ञ-ऋ का निमाड़ीकरण

पारंपरिक संयुक्त व्यंजन श्र-क्ष-ज्ञ तथा ह्रस्व स्वर ऋ को निमाड़ी में इसी रूप में स्थान नहीं मिला है, परंतु भाषा संहिता में जहाँ इनका उपयोग होता है, वहाँ इनके परिवर्तित रूप एवं ध्वनियों को निमाड़ी ने अपनी प्रकृति के अनुरूप ढालकर अपनाया है।

श्र-वर्ण--

स्वर रहित श तथा स्वर सहित र से मिलकर संयुक्त व्यंजन श्र (श्+र्+अ) की रचना होती है। चूँकि श वर्ण निमाड़ी में नहीं है इसलिए इसके संयोग से बने श्र को भी इस लोकभाषा में स्थान नहीं मिला है। निमाड़ी में श के स्थान पर 'स' का चलन है। अतः श्+र के स्थान पर स्+र या स+र ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। और जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा भी जाता है। साथ कुछ श्रकार शब्दों के निमाड़ी पर्याय भी मौजूद हैं।

प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप
श्राद्ध	सराध
श्री	सिरी
मिश्री	मिसरी
विश्राम	विसराम
श्रम	म्हीनत
शृंगार	सिंगार
शृगाल	कोल्ह्यो
श्राप	सराप
श्रावण	सरावण

क्ष-वर्ण--

संयुक्त व्यंजन क्ष में स्वर रहित क और स्वर-सहित ष का संयोग है। (क्+ष्+अ=क्ष) निमाड़ी में क्ष के ख, छ, क्क, क्ख और क्छ रूप मिलते हैं। साथ ही कुछ शब्दों के समानार्थी शब्द भी मिलते हैं।

प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप	प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप
अक्षर	आखर/अक्खर	राक्षस	राक्कस/राक्छस
लक्षमण	लखन/लछमण	लक्ष्मी	लछमी/लक्छमी
पक्ष	पक्छ/पखवाड़ो	क्षण	छण/पल
शिक्षा	सीख/सिक्छा	क्षमा	छमा/माफी
वक्ष	छाती	परीक्षा	परीक्छा/इंतिहान
प्रक्षालन	पखारनू/धवणू	पक्षी	पखेरू/पंछी/पक्छी
मोक्ष	मुक्ति	रक्षाबंधन	राखी
क्षार	खार	अक्षय	अखण/आखाती
अक्षत	चोखा	क्षत्र	छतरी
लक्ष्य	निसाणो	लक्ष	लाख

ज्ञ-वर्ण--

स्वर रहित ज और पंचमाक्षर ञ का संयुक्त रूप है ज्ञ। (ज्+ञ) इसकी सही वर्तनी ज्ञ और उच्चारण ज्यँ के आसपास होना चाहिए परंतु हिंदी आदि भाषाओं में इसे दोषपूर्ण तरीके से 'ज्ञ' लिखा और 'ग्य' बोला जाता है। यद्यपि संस्कृत के विद्वान तथा कुछ दक्षिण भारतीय इसका उच्चारण तो (ज्यँनी, विज्यँन, ज्यँनेश्वर जैसे) ठीक करते हैं परंतु लेखन में क्रमशः इसका ज्ञानी, विज्ञान, ज्ञानेश्वर-वाला रूप ही अपनाते हैं। आज हिंदी समेत अन्य अनेक भाषओं में इस वर्ण की वर्तनी दोषपूर्ण है। निमाड़ी लोकभाषा इस वाग्दोष से मुक्त है।

निमाड़ी वर्णमाला में न तो ज्ञ वर्ण का लेखन है और न ही ज्यँ ध्वनि का प्रयोग। हाँ! प्रचलित ज्ञ वर्ण की ग्य ध्वनि का प्रयोग निमाड़ी के कुछ शब्दों में जरूर होता है, और जहाँ इसके उपयोग की आवश्यकता पड़ती है-इसके उच्चारण और वर्तनी में पूरा तालमेल बना रहता है। वैसे निमाड़ी में ज्ञ ध्वनि के शब्दों की संख्या बहुत कम है परंतु जहाँ है, वहाँ इसे 'ग्य' बोला जाता है और ग्य ही लिखा भी जाता है। कुछ शब्दों के समानार्थी शब्द भी चलन में हैं।

प्रचलित रूप		निमाड़ी रूप
(वर्तनी में)	(उच्चारण में)	(वर्तनी एवं उच्चारण में)
ज्ञान	ग्यान	ग्यान
ज्ञानी	ग्यानी	ग्यानी
यज्ञ	यग्य	यग्य
विज्ञान	विग्यान	विग्यान
आज्ञा	आग्या	अग्या/हुकुम
तज्ञ	तग्य	जाण
ज्ञानवान	ग्यानवान	जाणकार
प्रतिज्ञा	प्रतिग्या	वचन/वायदो
कृतज्ञ	कृतग्य	ऐसानमंद

ऋ-वर्ण--

संस्कृत का ऋ ह्रस्व स्वर है। प्राकृत में इसका अभाव है और हिंदी में भी यह लुप्त होता जा रहा है। निमाड़ी में तो यह वर्ण है ही नहीं। आजकल भाषाओं में संस्कृत के तत्सम शब्दों में ही इसका प्रयोग हो रहा है। वैसे इसका प्रयोग दो प्रकार से होता है। स्वतंत्र रूप से शब्दों में और मात्रा के रूप में व्यंजनों के साथ मिलकर।

निमाड़ी में इसके वर्ण चिह्न 'ऋ' को वर्तनी में स्थान नहीं मिला है परंतु इसकी ध्वनि (र्+इ) रि को इस लोकभाषा ने अपनाया है। स्वतंत्र रूप से ऋ वर्ण युक्त शब्द निमाड़ी में नहीं है परंतु इसकी ध्वनि तथा ध्वनि के लेखन के लिए 'रि' का प्रयोग इसमें होता है।

ऋ के प्रचलित रूप	इनके निमाड़ी रूप	ऋ के प्रचलित रूप	इनके निमाड़ी रूप
ऋषि	रिसी	ऋतुमती	रितुवती
ऋतु	रितु	ऋषि पंचमी	रिसी-पाँचौं
ऋण	रिण/कर्जो	ऋद्धि	रिद्धी
ऋग्वेद	रिगवेद	ऋचा	रिचा

ऋ की मात्रा--

चूँकि निमाड़ी वर्णमाला में ऋ वर्ण का समावेश नहीं है अतः ऋ की मात्रा (ृ) भी निमाड़ी में नहीं है। परंतु ऋ की 'रि' ध्वनि निमाड़ी में है और यही इसकी मात्रा की वर्तनी बन जाती है। कुछ शब्दों के विकल्प भी निमाड़ी में हैं।

ऋ के प्रचलित रूप	इनके निमाडी रूप	ऋ के प्रचलित रूप	इनके निमाडी रूप
कृपा	किरपा	गृध्र	गीध/गिद्द
मृग	मिरग	दृष्टि	निघा/दीदो
हृदय	हिरदा/हिवड़ो	घृष्ट	ढीट/ढिट्टो
कृषक	किरसाण/किसाण	शृंगार	सिंगार
मृत्यु	मउत	पृथ्वी	धरती/पिरथवी
अमृत	अमरित	मृत	मरेल
कृष्ण	किसन	शृगाल	कोल्ह्यो
घृणा	नफरत	शृंग	सींग
दृष्य	सीन	गृह	घर
वृद्ध	डोकरा	वृक्ष	झाड़

टिप्पणी--

यद्यपि ऋ, ङ, ञ, श, ष तथा क्ष, ज्ञ एवं श्र वर्णों का प्रयोग निमाड़ी में नहीं होता परंतु कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों अथवा उदाहरणों में इनका विवेकपूर्ण उपयोग, भाषा की सहजता तथा बोधगम्यता हेतु किया जा सकता है। यथा-पुष्पेंद्र शुक्ल, मृदुला जोशी, पृथ्वीराज चौहान, सारंङ्गपाणी, ऋषि कुमार, शंकरलाल श्रोत्रिय, ज्ञनेश्वरी, तुषार, धनुश्री, परीक्षित, सुषमा आदि। इसी प्रकार--'पुष्प की अभिलाषा', 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'युधिष्ठिर का शंखनाद', 'आषाढ़ का एक दिन' वगैरह।

* * *

एकाक्षरी शब्दों की वर्तनी

'अक्षर' शब्द अनेकार्थी है। इसका प्रयोग वर्ण, स्वर, ब्रह्म, अनश्वर, लिखावट, शीर्ष आदि अर्थों में भी किया जाता है। यहाँ अक्षर का आशय हमने उस ध्वनि से लिया है, जिसका उच्चारण एक झटके से होता है। इसमें एक स्वर अवश्य होता है। स्वर के पहले या बाद में एकाधिक व्यंजन हो सकते हैं, परंतु यह अनिवार्य नहीं है।

निमाड़ी में एकाक्षरी शब्दों का प्रयोग अधिक एवं सार्थक होता है। जहाँ इन शब्दों में सामासिकता छिपी रहती है वहीं ये आज्ञार्थक क्रियारूप, क्रिया विशेषण, समुच्चयबोधक तथा विस्मयादि बोधक आदि के अर्थ-व्यंजक भी होते हैं।

भाषा में इन शब्दों की वर्तनी पर ध्यान देना तो आवश्यक है ही, साथ ही यह भी आवश्यक है कि इनका प्रयोग कहाँ और कैसे योगात्मक/अयोगात्मक रूप से किया जाए, निमाड़ी के इन एकाक्षरी शब्दों में कुछ शब्द बहुरूप हैं तो कुछ अनेकार्थी। लेखक हो या पाठक दोनों को ही इनके प्रयोग में सावधानी बरतनी चाहिए।

(क) बद्धाक्षर एकाक्षरी शब्द (इनके अंत में व्यंजन होता है)--

हाव् (हाँ) : व्यंजन-स्वर-व्यंजन

ढोर् (पशु) : व्यंजन-स्वर-व्यंजन

स्कुल् (पाठशाला): व्यंजन-व्यंजन-स्वर-व्यंजन

न्हार् (शेर) : व्यंजन-व्यंजन-स्वर-व्यंजन

फुर्र (फुर्र) : व्यंजन-स्वर-व्यंजन-व्यंजन

कुण् (कौन) : व्यंजन-स्वर-व्यंजन

(नोट--स्मरण रहे कि अक्षर विभाजन उच्चारण के आधार पर होता है। शब्दों के अंत में आने वाला स्वर 'अ' प्रायः उच्चरित नहीं हो पाता है। ऊपर दिए गए एकाक्षरी शब्दों के उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं।)

(ख) मुक्ताक्षर एकाक्षरी शब्द (इनके अंत में स्वर आता है)--

आ (आओ)- आज्ञार्थक क्रिया : म्हारा पछेड़ी आ (मेरे पीछे आओ)

जा (जाओ)- आ.क्रिया : टेम पर स्कुल जा (समय पर स्कूल जाओ)

ला (लाओ)- आ.क्रिया : चिलिम भरी ला (चिलम भरकर लाओ)

खा (खाओ)- आ.क्रिया : हेटऽ बठीनऽ खा। (नीचे बैठकर खाओ)
पी (पिओ)- आ.क्रिया : कळस्या सी पाणी पी (लोटे से पानी पिओ)
पे (पिओ)- आ.क्रिया : दारू मत पे (शराब मत पिओ)
दs (दो) - आ.क्रिया : रोटी संग गुड़ भी दs
(रोटी के साथ गुड़ भी दो)
लs (लो)- आ.क्रिया : जवणा हाथ मs परसाद लs
(दाहिने हाथ में प्रसाद लो)
गा (गाओ)- आ.क्रिया : सिंगाजी का भजन गा
(सिंगाजी के भजन गाओ)
धो (धोओ)- आ.क्रिया : नदी पर वन्हा धो (नदी पर कपड़े धोओ)
ई (यह)- सर्वनाम : ई म्हारो धणी आए (यह मेरा पति है)
ई (ये)- सर्वनाम : काँ गया ई लोग ? (ये लोग कहाँ गए ?)
ऊ (वह)- सर्वनाम : ऊ काई जाणऽ ! (वह क्या जाने !)
ऊ (वे)- सर्वनाम : ऊ तो वराती आए (वे तो बाराती हैं।)
तू (तू)- सर्वनाम : तू हायबाप मत करऽ। (तू हड़बड़ी मत कर)
छे (है)- सहा.क्रिया : अभी तो रात बाकी छे।
(अभी तो रात बाकी है।)
था (थे)- सहा.क्रिया : दाजी सिनिमा गया था।
(बुजुर्गवर सिनेमा गए थे।)
थो (था)- सहा.क्रिया : हऊँ काल आयो थो। (मैं कल आया था।)
दी (दी, दिया)- क्रि. : मनऽ तो जुबान दई दी (मैंने तो वचन दे दिया।)
जी (जी)- अव्यय : जी हो, गुरुजी (जी हाँ, गुरुजी।)
का (के)- विभक्ति : पटील का कुत्रा। (पटेल के कुत्ते।)
को (का)- विभक्ति : गुलाब को फूल (गुलाब के फूल।)
मs (में)- विभक्ति : गाँव मs सरकस आयोज
(गाँव में सर्कस आया है।)
पs (पर)- विभक्ति : माथा पs पोटळई धर। (सिर पर पोटली रख।)
खs (को)- विभक्ति : मिजवान खs जिमाड़ो।
(मेहमान को भोजन कराओ।)

टिप्पणी: एकाक्षरी शब्दों से विलंबित-अ(s) चिह्न अब हटा लिया गया है। संदर्भ हेतु, 'निमाड़ी में नवाचार' नामक अध्याय देखें।

ओ (संबोधन विभक्ति) : ओ माय! तू काँ छे ? (ओ माँ! तुम कहाँ हो ?)
हौ (हाँ) स्वीकृति सूचक : तुम हौ कहो तो हऊँ जाऊँ ?
(तुम हाँ कहो तो मैं जाऊँ ?)
तो (तो) संकेत वाचक : नळ आवऽ तो न्हाऊँ (नल आए तो नहाऊँ)
काँ (कहाँ) क्रिया विशेषण : काँ जाओगा तुम ? (कहाँ जाओगे तुम ?)
ज्हाँ (जहाँ) क्रि.वि. : ज्हाँ मरजी होए, जाई सकोज
(जहाँ इच्छा हो, जा सकते हो।)
व्हाँ (वहाँ) क्रि.वि. : व्हाँ किच्चड़ छे रे। (वहाँ कीचड़ है रे)
य्हाँ (यहाँ)-क्रि.वि. : य्हाँ सब मजा मऽ छे। (यहाँ सब मजे में हैं)
सी (से) अव्यय : उप्पर सी नीच्च तक। (उपर से नीचे तक)
सी (ही) अव्यय : जाते सी खबर करजे। (जाते ही सूचना देना।)
ते (तो) अव्यय : घाम छे ते कोई हुयो, छतरी लगा।
(धूप है तो क्या हुआ, छाता लगा)
गूं (मल) संज्ञा : सोयड़ा को गूं न लीपणऽ को न छाबणऽ को
(सूअर का मल न लीपने का न छाबने का अर्थात् किसी काम का नहीं)
लू (लपट) संज्ञा : लू-लपट सी बीमार मत पड़जो।
(लू-लपट से बीमार मत पड़ना)
खो (खोह) संज्ञा : बीड़ीमठी गाड़ी खो मऽ समई गई।
(बड़ी सी गाड़ी खोह में समा गई।)
छौ (छह) विशेषण : छौ दिन बाद आवजे। (छह दिन बाद आना।)
जूँ (जूँ) संज्ञा : माथा मऽ एक भी जूँ नी हँई (सिर में एक भी जूँ नहीं है)
नऽ (ने) विभक्ति : मनऽ (मैंने), वोनऽ (उसने), गाय नऽ (गाय ने)
कि (कि) अव्यय : निकळज कि धक्को देऊँ। (निकलता है कि धक्का दूँ।)
की (की) अव्यय : मामा की छोरी गाँव की गोरी
(मामा की लड़की, गाँव की सुंदरी)
नी (नहीं) क्रि.वि.: मखऽ नी जाणू हँई (मुझे नहीं जाना है।)
नऽ (कर) कृदंत : न्हाईनऽ आवजे (नहाकर आना)
नऽ (और) समुच्चयबोधक :धणी नऽ बयरो (पति और पत्नी)

* * *

निमाड़ी में नवाचार

निमाड़ी में अनेक एकाक्षरी शब्दों का बाहुल्य है। नवाचार में हमने उन अकारांत एकवर्णी-एकाक्षरी सार्थक शब्दों के प्रयोग और वर्तनी की प्रासंगिकता को परखने का प्रयत्न किया है, जो निमाड़ी में परंपरा एवं अनुकरण से चली आ रही है। हमने पाया कि, निमाड़ी के इन शब्दों (कऽ, खऽ, नऽ, पऽ, मऽ, लऽ, सऽ) के ध्वनि/प्रयोग तो सार्थक हैं, परंतु इनकी वर्तनी पर एक नए दृष्टिकोण की आवश्यकता है; ताकि भाषा का लेखन और पठन-पाठन; सरल, सहज, सही और मानक बन सके।

भाषा विज्ञान का नियम है कि ध्वनियाँ स्थिर नहीं बल्कि गतिशील होती हैं। जो भाषाएँ परिवर्तन स्वीकार कर लेती हैं वे सहजता से विकसित होती रहती हैं। हिंदी इसका ज्वलंत उदाहरण है। निमाड़ी भी इससे अछूती नहीं है। किसी भाषा की ध्वनियों के उच्चारण उसके बोले जाने वाले जनसमूह के मुख से स्वाभाविक रूप से निस्सृत होते हैं, परंतु उन उच्चरित ध्वनियों को वर्तनी में उतारने का दायित्व मुख्यतः भाषाविदों और साहित्यकारों पर रहता है।

निमाड़ी में विलंबित 'अ' की ध्वनि का विशेष महत्व है। इसको समझे बिना, निमाड़ी भाषा के अस्तित्व का ठीक से आकलन नहीं किया जा सकता। निमाड़ी के लहजे का प्राण है, विलंबित 'अ' का सही उच्चारण; और वर्तनी में उसके वर्ण चिन्ह का सटीक प्रयोग। ग्रंथ, 'निमाड़ी लोक भाषा का उद्गम, विकास, स्वरुप और साहित्य ' के परिशिष्ट में भी विलंबित 'अ' ध्वनि पर एक विस्तृत आलेख दिया गया है।

हम जानते हैं कि मूल, रूप से निमाड़ी में विलंबित 'अ' की ध्वनि का उच्चारण अकारांत शब्दों में किया जाता है; तथा इसके वर्ण-चिह्न(ऽ) की वर्तनी को, शब्दों अथवा पदों के अंत्याक्षरों में मात्रा की तरह लगाया जाता है। यथा-आगऽ, पाछऽ, कुणनऽ, मखऽ, दौड़ीनऽ, बकरीनऽ, उठऽगऽ, गंगा ख, दाळनऽ भात आदि।

यहाँ हमारे नवाचार के केन्द्र में, निमाड़ी भाषा के कुछ एक ऐसे एकवर्णी - एकाक्षरी शब्द हैं, जिनका, भाषा में प्रायः प्रयोग होता रहता है, और जिनके साथ सैकड़ों वर्षों से हम, अनुकरणवश विलंबित-अ वर्ण चिन्ह, 'ऽ' का प्रयोग करते आ रहे हैं। यथा- कऽ, खऽ, दऽ, नऽ, पऽ, मऽ, लऽ, सऽ, आदि।

भाषा की 'वाणी और वर्तनी' के अध्ययन में हमने पाया कि, (अ) वाक्य अथवा पद में, इन एक वर्णी-एकाक्षरी शब्दों के उच्चारण स्थिर न रहकर प्रयोगानुसार परिवर्तित

होते रहते हैं। जैसे-'बकरीनऽ' और 'बकरी न' (ब) कुछ शब्दों के रूप एवं अर्थ भी, निमाड़ी में, वर्तनी के साथ ही प्रयोगानुसार बदल जाते हैं; और इसमें, हिंदी जैसी, असमंजस की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है। जैसे-छोरी आई नऽ गई। 'छोरी न पाणी भर्यो'। 'छोरीन ऽ पाणी भरनऽ गई '। (स) सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि, निमाड़ी में, ('नऽ ध्वनि को छोड़कर'), एकाक्षरी आकरांत शब्दों के उच्चारण में, 'अ' ध्वनि का विलंबन होता ही नहीं है। जैसे-'माथा प', 'टोपली म', 'काकी न', 'याणी स', 'पाणी' ल', 'छोरी ख', 'परसाद द'। यहाँ, इन एकाक्षरी शब्दों में, विलंबित मात्रा-चिन्ह 'ऽ', नहीं लगाना चाहिए। यह निमाड़ी की भाषिक रूप-रचना तथा व्याकरणिक दृष्टि से भी सही नहीं है।

स्मरण रहे, उपर्युक्त नवाचार/नियम इन वर्णों (क, ख, न, म, प, द, ल, स) के एकवर्णी-एकाक्षरी रूपों के लिए ही है। जब ये वर्ण, विभक्ति अथवा प्रत्यय बनकर किसी अन्य शब्दों में जुड़कर, या संयोजक/अव्यय बनकर आते हैं, जब वहाँ की ध्वनि के अनुसार इनमें विलंबित 'अ' का मात्रा चिन्ह 'ऽ' अवश्य लगेगा। जैसे-'मखऽ/मकऽ', 'तुमनऽ', छोरीनऽ', माय नऽ दाजी'। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य कि, हिंदी के शब्द, 'और' के अर्थ में आने वाले निमाड़ी का, वर्तमान एकवर्णी-एकाक्षरी शब्द 'नऽ' निमाड़ी में, 'मुख-सुख', 'प्रयत्न-लाघव' और वर्ण-विपर्यय के चलते, घिसकर और रूप बदलकर, अनऽ 'से नऽ' हो गया है। आरंभिक निमाड़ी में यह शब्द लेखन में, एकाक्षरी नहीं था, बाद में हुआ है, जबकि इसके उच्चारण पूर्ववत ही है, अतः जब यह समुच्य/संयोजक अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है तो इसमें विलंबित 'अ' का मात्रा चिह्न लगाया जाना चाहिए, ताकि वर्तनी, इसकी सटीक ध्वनि का प्रतिनिधित्व कर सके। इसके दोनों रूप प्रचलित और सही हैं। जैसे-रात नऽ दिन, दाजी अनऽ माय।

(टिप्पणी : विषयांतर से, यहाँ यह बात स्पष्ट रूप से याद रखने योग्य है कि, विलंबित 'अ' का प्रयोग केवल अकारांत शब्दों के अंत में ही किया जाता है। इसका प्रयोग कभी भी आकारांत, इकारांत, ईकारांत, उकारांत, ऊकारांत, ओकारांत, औकारांत, अथवा शुद्ध व्यंजनांत, या अनुस्वार युक्त वर्ण के साथ नहीं किया जाना चाहिए। यथा - सहेबाऽ, रमसाऽ, हाँजीऽ, नीऽ, वउऽ, वखाणूऽ, मंऽ, नंऽ, जासाँऽ, अवँऽ, ओऽ, मवर्योऽ, भागजऽ, आवजऽ, आदि प्रयोग सही नहीं हैं।)

••••

अविकारी शब्दों की वर्तनी

निमाड़ी में हज़ारों शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यहाँ कुछ ऐसे आम अविकारी शब्दों का उल्लेख किया जा रहा है जिनके लेखन में अशुद्धियों की प्रायः संभावना बनी रहती है। अपणा को आपणा, इच्छू को बिच्छू, असोज को असोच लिखा जाना आम बात है। कभी ग्रामवासियों और नगरवासियों के उच्चारण भेद से, कभी अन्य बोलियों के प्रभाव से तो कभी भाषा की बारीकियों को न समझ पाने आदि कारणों से वर्तनी त्रुटिपूर्ण हो जाती हैं। यहाँ कुछ शब्दों की सूची दी जा रही है ताकि इस लोकभाषा की प्रकृति को समझा जा सके। यहाँ शुद्ध रूप दिए जा रहे हैं-

स्थान सूचक--

य्हाँ (यहाँ)	व्हाँ (वहाँ)	ज्हाँ (जहाँ)	काँ (कहाँ)
आगऽ (आगे)	पाछऽ (पीछे)	उप्पर (ऊपर)	निच्च (नीचे)
सामनऽ/सामे(सामने)	वरऽ (अपनी ओर)	परऽ (अपने से दूर	नजीक (नजदीक)
जौणऽ (पास)	भितरऽ/भित्तर (भीतर)	भायरऽ (बाहर)	मऽ (में)
अल्यांग (इस ओर)	वल्यांग (उस ओर)	कल्यांग (किस ओर)	जल्यांग (जिस ओर)
पल्यांग (दूसरी ओर)	जौणों (दाहिना)	डाँवो (बाँया)	जगा (जगह)
इचलो (बीच का)	पयलो (पहला)	पाछलो (पिछला)	अगलो (आगे का)

काल सूचक--

सौंदारऽ	भमसारऽ	बड़ी फज़र
(उषा का सौंदर्यकाल)	(भोर)	(प्रातःकाल)
दिननिकळे (पौ-फटते ही)	याणी (सुबह)	झाड़ऽ बखत
रोटा बखत	(सुबह)	(रात्रि का अंतिम प्रहर)
(भोजन का समय)	दुफार (दो-पहर)	मद्ध्यानी (मध्याह्न)

संजा/साम	चारई संजा	सरी संजा
(शाम)	(सौंदर्यमयी-शाम)	(गोधुली वेला)
मांजर झाप	रात	अधरात
(दिन और रात्री की संक्रांति)	(रात्री)	(मध्य रात्री)
फिरि (तब, उस समय)	काल (कल)	परु/परसू (परसों)
नरसू (नरसों)	तुरत (तुरंत)	तवँज (तब ही)
तवंतो (तब ही तो)	आखिर (अंतत)	जवँज (जब ही)
सदा (सदैव)	हमेसा (हमेशा)	अवँलग (अब तक)
दिनभरी (सारा दिन)	दिंडूबे (दिन डूबे)	कदी (कभी, यदि)
अवँ (अब)	जवँ (जब)	कवँ (कब)
तवँ (तब)	दरोज (प्रतिदिन)	हरदफा (हर बार)
कईवारी (कई बार)	दुबारा (दूसरी बार)	दरसाल (प्रति वर्ष)
टेम/समे (समय)	पहेर (प्रहर)	गए साल (पिछले वर्ष)
अबकेर	अवतऽसाल	अवँज
(इस वर्ष)	(अगले वर्ष)	(अभी)
अबकी (इस बार)	कवँको (कब का)	एतरा मऽ (इतने में)
ओतरा मऽ (उतने में)	जेतरा मऽ (जितने में)	केतरा मऽ (कितने में)

परिमाण सूचक--

नकु-नकु (नाम मात्र)	थोड़ो (कम)	जरा सो (थोड़ा सा)
जराक (थोड़ा/जरा)	घणो (अधिक)	भौत (बहुत)
बड़ो-मठो (बड़ा-सा)	बेसको (बहुत सारा)	साँवटो (बहुत बड़ा)
भरीम (ठोस)	भारीबद (भारी-भरकम)	जाड़ो भुस्स (जाड़ा-मोटा)
हळको-फुळको	हळको	पोकळो
(हलका-फुलका)	(कमजोर)	(खोखला)
फैलेल (फैला हुआ)	पसरेल (फैला हुआ)	पिचकेल (पिचका हुआ)
जेतरो (जितना)	ओतरो (उतना)	एतरो (इतना)
केतरो (कितना)	नीरो (पूरी तरह)	निखालिस (विशुद्ध)
ठांय ठिक्यो (व्यवस्थित)	खोब (खूब)	भर्‌यो पूरो (भरा पूरा)

भरी तूरी (भर पूर)	बरोब्बर (बराबर)	एतरोज (इतना ही)
काफी (पर्याप्त)	मुक्तो (काफी)	जादा (ज्यादा)
कमती (कम)	बढीनऽ (बढ़कर.	भरेल (भरा हुआ)
बोळऽ-बोळ (लबालब)	रीतो (खाली)	चाकळो (चौड़ा)
मोकळो (विस्तृत)	उंडो (गहरा)	उथळो (उथला)
सबई (सब ही)	मुट्ठी भरी (मुट्ठी भर)	खोचो भरी (चुल्लू भर)
हथळई भरी (हथेली भर)	पस भरी (अंजुलीभर)	बोट भरी (अंगुली भर)
गाड़ी भरी (गाड़ी भर)	खीड़ी भरी (टोकरी भर)	बमभरेल (लबालब)

रीति सूचक--

असो (ऐसा)	कसो (कैसा)	वसो (वैसा)
जसो (जैसा)	असोज (ऐसे ही)	वसोज (वैसे ही)
कसोज (कैसे ही)	कसैं भी (कैसे भी)	जसोज (जैसे ही)
जसैं भी (जैसे भी)	अपणा-आप (अपने-आप)	कसैं भी (कैसे भी)
मन-सी (मन-से)	एक-सात (एक-साथ)	ध्यान-सी (तन्मयता-से)
सई (ठीक)	सैं/सरी (समान)	सच्ची (सच)
बेसक (बे-शक)	खासकरीनऽ (विशेषतया)	दरसल (दर-असल)
भौत करीनऽ (बहुत करके)	हौ/हव (हाँ)	नईं तो (नहीं-तो)
ते-काई (तो क्या)	कईं-नी (कुछ नहीं)	एकासी (इससे)
एकालेणऽ (इसलिए)	एका लेणऽ (इसके लिए)	वजे-सी (वजह-से)
ईज (यही)	ऊज (वही)	तोज (तो ही)
तवँज (तब ही)	तरऽ/तरा (तरह)	रात भरी (रात भर)

संबंध सूचक--

रूबरू (सामने)	जरियो (माध्यम)	एवज (बदले)
अलावा (सिवाय)	तरफ (ओर)	मारफत (जरिया)
परभारू (दूसरों के जरिए)	नाव (नाम)	सरीको (सदृश्य)
जसो (जैसा)	लायक (अनुकूल)	सिवा (अलावा)
मारे (कारण, वजह)	करीनऽ (करके)	लेखऽ (लिए)

संगात (साथ)	पण (परंतु)	अरु (तथा)
नऽ (और)	न (ने)	खऽ (को)
सी (से)	पाखऽ (के बिना)	नजीक (नजदीक)
निमुत्त (निमित्त)	निस्बत (लगाव, तुलना)	पेटऽ (नामें)

सामासिक शब्द--

दीया-बत्ती (दीप-बाती)	दूद-धैं (दूध-दही)
वरत-वरतला (व्रत-उपवास)	बईण-बौणई (बहन-बहनोई)
लाड़ा-लाड़ी (दुल्हा-दुलहिन)	सासू-वऊ (सास-बहू)
अवणो-जाणो (आना-जाना)	उच्चो-निच्चो (ऊँचा-नीचा)
भायरऽ-भितरऽ (बाहर-भीतर)	दगड़ा-ढाटा (पत्थर-टीले)
लोग-लुगई (आदमी-औरत)	धणी-बैरो (पति-पत्नी)
छोरा-छोरी (लड़के-लड़की)	नात्या-पोत्या (नाती-पोते)
उट-बट (उठक-बैठक)	ऊटपटांग (जो बेढंगा हो)
नक्टो	अधूरो
नककटा, (निर्लज्ज)	(जो पूरा न हो)
कुत्तरपेट्यो (पिचके पेट वाला)	लमटंगो (लंबी टांगवाला)
दुईहत्तो (दुहत्था)	रातमरात (रातोंरात)
लमडोर्‌यो (अधिक लंबा)	लमतोतर्‌यो (लंबा-पतला)
चौको-बासण (चूहा-चौका)	गोबरपूंजो (गोबर-घास आदि)
कळस्यागिलास (लोटे-गिलास)	लोण-मिरी (नमक-मिर्च)
तिव्हाय	दुपट्टो
(बोवाई का उपकरण)	(जिसके दो पट्टे हों)
कंदिलचिमनी (लालटेन और ढिबरी)	रजवाड़ो (देशी रियासत)
घिंवसक्कर (घी और चीनी)	टुटपुँज्यो (कमपूँजी वाला)
दाळबाटी (दाल और बाटी)	नाक-कान-डोळा (नाक, कान और आँखें)
लोण-तेल-लक्कड़	दरोज (प्रतिदिन)
(नमक, तेल, लकड़ी)	काळो-पेळो (काला-पीला)
	ठांयठिक्यो (व्यवस्थित)

हत्ती-घोड़ा-पालकी (राजसी ठाठ) अवळ्या-जवळ्या
लोग-लुगई-लेकरू (भरी पूरी गृहस्थी) (सहजन्मा, जुड़वाँ)
दिन निकळे (सुबह होने पर) गाँव-गाँव (हर गाँव में)
कपड़-छान (कपड़े से छना हुआ) भड़-भूंज्यो (भाड़ में भुना हुआ)
चिलिम-तमाखू (चिलम-तम्बाकू) घाघरा-पल्टन (स्त्री सेना)
घर-घुस्सो (एकांतप्रिय) अधमर्‌यो (अधमरा)
काळोभुस (काला-भुजंग) चौमासो (चार माह का समूह, वर्षा का)
पसेरी (पांच सेर का वजन) चौखुट (चौकोन)
गुल्ली-डंडो (गिल्ली और डंडा) पाप-पुन (पाप अथवा पुण्य)
काळो-डुंड (काला-कलूटा) एक्कलकोड़ो (एकाकी)

* * *

संख्यावाचक शब्दों की वर्तनी

प्रायः समृद्ध भाषाओं में भी संख्यावाचक शब्दों के उच्चारण और लेखन में एकरूपता का अभाव दिखाई देता है। यहाँ हमने निमाड़ी के बहुप्रयुक्त संख्यावाचक शब्दों को समेटकर उनकी मानक वर्तनी निर्धारित करने का प्रयास किया है। कुछ शब्दों की दो-दो वर्तनियाँ चलन में हैं और वे मान्य भी हैं।

एक से सौ तक-संख्यावाचक शब्द :

एक	ग्यारऽ/ग्यारा	इक्कीस	इकतीस
दुई	बारऽ/बारा	बावीस	बत्तीस
तीन	तेरऽ/तेरा	तेवीस	तैंतीस
चार	चौदऽ/चौदा	चोवीस	चौंतीस
पाँच	पंदरऽ/पंदरा/पंधरऽ	पच्चीस	पैंतीस
छे/छौ	सोळऽ/सोळा	छब्बीस	छत्तीस
सात	सतरऽ/सत्रा/सत्रा	सत्तावीस	सैंतीस
आट	अठारऽ/अठारा	अट्ठावीस	अड़तीस
नौ	उन्नीस	उनतीस	उनचालीस
दस	बीस	तीस	चाळीस

इकताळीस	इक्यावन	इकसट
बैंयाळीस	बावन	बाँसट
तिरताळीस	तिरेपन	तिरेसट
चुम्माळीस	चौव्वन	चौंसट
पैंताळीस	पचपन	पैंसट
छियाळीस	छप्पन	छाँछट
सैंताळीस	सत्यावन	सड़सट
अड़ताळीस	अठ्यावन	अड़सट

उनपचास	उनसाट	उनसत्तर
पचास	साट	सत्तर
इकोत्तर	इक्यासी	इक्यानबे
बहोत्तर	बैंयासी	बानबे
तिहोत्तर	तिरयासी	तिरयानबे
चहोत्तर	चौर्यासी	चौर्यानबे
पिचोत्तर	पिच्चासी	पिंच्यानबे
छियोत्तर	छियासी	छियानबे
सतोत्तर	सत्यासी	संत्यानबे
अठोत्तर	अट्यासी	अंट्यानबे
उन्यासी	निभ्यासी	निंन्यानबे
अस्सी	नब्बे	सौ

क्रमबोधक संख्यावाचक शब्द--

पयलो (पहला)	ग्यारवों (ग्यारहवाँ)
दूसरो (दूसरा)	बारवों (बारहवाँ)
तीसरो (तीसरा)	तेरवों (तेरहवाँ)
चौथो (चौथा)	चौदवों (चौदहवाँ)
पाँचवों (पाँचवाँ)	पंदरवों (पंद्रहवाँ)
छटवों (छटवाँ)	सोळवों (सोलहवाँ)
सातवों (सातवाँ)	सतरवों (सत्रहवाँ)
आठवों (आठवाँ)	अठारवों (अठारहवाँ)
नौवों (नौवाँ)	उन्नीसवों (उन्नीसवाँ)
दसवों (दसवाँ)	बीसवों (बीसवाँ)

कुछ अन्य क्रमबोधक--

पयलम परती (पहली बार)
दुसरावण (दूसरी बार)
तीसरावण (तीसरी बार)
चौथऽ कावऽ (चौथी बार)

पाँचवीं डाँय (पाँचवीं बार)
हरेक चक्कर (प्रत्येक बार)

परिमाणबोधक संख्यावाचक शब्द--

नकु-नकु (अत्यल्प)
जरासो (थोड़ा-सा)
चुकटी भरी (चुटकी भर)
बोट भरी (अंगुल्यग्र प्रमाण)
खोचो भरी (चुल्लू भर)
पसभरी (अंजुली भर)
मुट्ठी भरी (मुट्ठी भर)
खोळो भरी (आँचल भर)
टोपली भरी (टोकरी भर)
घणो (बहुत)
पुस्कळ (अपरिमित)
अधूरो (अपूर्ण)
आदो (आधा)
पूरो (पूरा)
औखो (संपूर्ण)
सवायो (सवाया)
ड्योढ़ो (ड्योढ़ा)
खीचो भरी (जेब भर)
गाड़ी भरी (गाड़ी भर)
मुक्तो (काफी)
जादा (अधिक)

अपूर्णांक बोधक संख्यावाचक शब्द--

पाव (चौथाई अंश)
आदो (आधा)
पोण (पौन)
देड़ (डेढ़)
अढ़ई (ढाई)
साड़ा तीन (साढ़े तीन)
चखोंडो (चौथाई खंड)
तीन चखोंडा (तीन चौथाई खंड)
सवा (सवा)
सवा दुई (सवा दो)
पोणा तीन (पौने तीन)

आवृत्तिबोधक संख्या वाचक शब्द--

पोण्यो (तीन चौथाई)
सवायो (सवा गुना)
ड्योढ़ो (डेढ़ गुना)
अढ़ायो (ढाई गुना)
दुगणो (दो गुना)
तिगणो (तीन गुना)
चौगणो (चौगुना)
एकसर्‌यो (इकहरा)
दुई सर्‌यो (दुहरा, दो आवृत्ति का)
तीन सर्‌यो (तिहरा, तीन आवृत्ति का)
चारसर्‌यो (चौहरा, चार आवृत्ति का)
पांसर्‌यो (पांच लड़ी वाला)
नौसर्‌यो (नौसर)

समुदाय बोधक संख्यावाचक शब्द--

जोड़ी (दो वस्तुएँ)
फाड़ा (छह वस्तुएँ)
दरजन (बारह वस्तुएँ)
कोड़ी (बीस वस्तुएँ)
सैकड़ो (सौ वस्तुएँ)
हजारी (हजार वस्तुएँ)
लखटक्यो (लाख रुपये वाला)

दुवई (दोनों)	नवई (नौ के नौ)
तीनई (तीनों)	दसई (दसों)
चारई (चारों)	पचासई (पचासों)
पाँचई (पाँचों)	हजारई (हजारों)
छवई (छहों)	सबई (सभी)
सातई (सातों)	
आटई (आठों)	

तिथिबोधक संख्यावाचक शब्द--

पडवां (प्रतिपदा)	ग्यारस (एकादशी)
दूज (द्वितीया)	बारस (द्वादशी)
तीज (तृतीया)	तेरस (त्रयोदशी)
चउत (चतुर्थी)	चौदस (चतुर्दशी)
पाँचौं (पंचमी)	अमोस (अमावस्या)
छट (षष्ठी)	पुन्योव (पूर्णिमा)
सातों (सप्तमी)	अट्ठौं (अष्टमी)
नौ/नौमी (नवमी)	दस्सौं (दशमी)

* * *

हल् चिह्न का प्रयोग

भाषा में प्रायः स्वर रहित व्यंजनों को इंगित करने के लिए हल् चिह्न का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत के शब्दों में आवश्यकतानुसार हल् का प्रयोग करना अनिवार्य होता है, परंतु हिंदी में तद्भव शब्दों के लिए यह आवश्यक नहीं कि उच्चारण के अनुसार हल् चिह्न लगाया ही जाए। हिंदी में संस्कृत के तत्सम शब्दों में भी अब धीरे-धीरे हल् का प्रयोग घटने लगा है। यहाँ यह समझ लेना भी आवश्यक है कि हल् चिह्न विराम चिह्नों की श्रेणी में नहीं आता है।

निमाड़ी में संस्कृत के तत्सम शब्दों का अभाव है और तद्भव शब्दों में यह आवश्यक नहीं कि उच्चारण के अनुसार हल् चिह्न का प्रयोग किया ही जाए। भाषा की प्रकृति के चलते भी यह आवश्यक नहीं है कि मध्य में अथवा अंत्य स्थिति में ह्रस्व 'अ' अनुच्चरित होते हुए भी हल् चिह्न लगाया ही जाए। सन् और धत् जैसे कुछेक चुने-गिने हलंत् शब्द हैं जो कभी-कभार निमाड़ी में दिखाई पड़ते हैं। एवम्, अहम्, सायम् जैसे शब्द आजकल एवं, अहं, सायं के रूप में लिखे जाते हैं, परंतु इसका मतलब यह नहीं कि निमाड़ी में हल् चिह्न का प्रयोग होता ही नहीं है।

निमाड़ी में हल् चिह्न का प्रयोग ठेठ निमाड़ी शब्दों में, विशेष प्रयोजन से, संयुक्त, द्वित्व एवं गुच्छ व्यंजनों को उचित उच्चारण तथा वर्तनी देने के लिए, किया जाता है।

एक-रूप (द्वित्व) संयुक्त व्यंजन--

घट्टी (चक्की, पीसनी)	नट्टी (नरेटी)
धुळ्ळो (धूल)	वळ्ळो (भूसा)
बळ्ळाणू (बड़बड़ाना)	ढळ्ळाट (चीख/दहाड़)
खाद्दड़ (पेटू)	खड्डो (गड्ढा)
बट्ठड़ (कुंद, भोथरा)	चोट्टो (चोर)

भिन्न रूप, संयुक्त व्यंजन--

हाड्यो (कौआ)	रह्यपट (झापड़)
होर्यो (तोता)	गुबड्यो (उल्लू)

जाळ्या (झरोखा)	कोडबोळ्या (उपवासी व्यंजन)
बट्ठड़ (भोथरा)	डोळ्यो (कांटे उठाने का उपकरण)
ढेर्यो (भेंगा)	खाळ्यो प्राकृतिक नाला
अद्धर (ऊपर)	लोचड्या (नोच-खरोच)
पोर्या (लड़के)	भयर्यो (बहरा)

व्यंजन-गुच्छ, संयुक्त शब्द--

अंग्ठ्यो (अंगूठा)	अट्ठ्यावन (अठावन)
टाल्ह्यो (बूढ़ा बैल)	निवल्ळ्ई (अति मलिन स्त्री)
ल्ह्यर (तरंग)	कोल्ह्या (गीदड़)
ल्ह्या-ल्ह्या (त्राहि-त्राहि)	अंठ्यानबे (अठानवे)

टिप्पणी : जब से टाइप-राइटर का स्थान की-बोर्ड ने ले लिया है, तब से, स्वर रहित 'र्' को, अगले वर्ण के सिर पर, 'रेफ़' के रूप में लगाया जाता है। परिणामस्वरुप --

पोर् या को पोर्या

होर् या को होर्या

लिखा जाने लगा है। वर्तनी के दोनों प्रकार सही हैं।

विचारणीय अशुद्धियाँ

यहाँ कुछ ऐसी अशुद्धियों की चर्चा की जा रही है जो प्रायः अज्ञानवश हो जाया करती हैं। भाषा में प्रायः दो प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं। एक व्याकरण संबंधी, दूसरी उच्चारण संबंधी। लोकभाषाओं में हर दस-बीस कोस पर उच्चारण में विविधता पाई जाती है। इनमें उच्चारण की अपेक्षा व्याकरणिक अशुद्धियाँ अधिक होती हैं।

निमाड़ी लोकभाषा का भाषावैज्ञानिक अध्ययन हो चुका है। भाषा में, अब एकरूपता लाने का दायित्व रचनाकारों पर है। सुधि लेखकों को चाहिए कि वे इन अशुद्धियों से बचें।

निम्न तालिका में, वर्तमान निमाड़ी भाषा में प्रचलित कुछ विचारणीय त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा रहा है। इन अशुद्धियों के शुद्ध रूप भी विवरण सहित दिए गए हैं--

1. कारक की विभक्तियों की अशुद्धियाँ--

	प्रचलित अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	विवरण
(क)	केखो (किसका)	केको/कुणको	ये, प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कौन' के संबंध
	केखी (किसकी)	केकी/कुणकी	कारक रूप हैं। निमाड़ी में इनकी
	केखा (किसके)	केका/कुणका	विभक्तियाँ को, की, का हैं। इनके स्थान पर खो, खी, खा विभक्तियों का प्रयोग व्याकरणिक त्रुटि तथा भाषा की अशुद्धि है।
(ख)	जेखो (जिसका)	जेको	ये, संबंधवाचक सर्वनाम 'जो' के संबंध
	जेखी (जिसकी)	जेकी	कारक रूप हैं। निमाड़ी में इनकी सही
	जेखा (जिसके)	जेका	विभक्तियाँ को, की, का हैं। यहाँ खो, खी, खा का प्रयोग अशुद्ध है।

नोट--ध्यातव्य है कि निमाड़ी के कारकों में, खो, खी, खा, विभक्तियाँ होती ही नहीं हैं।

(ग)	येनऽ (इसने)	एनऽ	यहाँ सर्वनाम 'वह' (अन्य पुरुष) तथा
	वोनऽ (उसने)	ओनऽ	सर्वनाम 'यह' (निश्चयवाचक) के

येखऽ (इसको)	एखऽ	विभिन्न कारकों के रूप दर्शाए गए
वोखऽ (उसको)	ओखऽ	हैं। ध्यातव्य है कि हिंदी के
वोका लेणऽ	ओका लेणऽ	समान ही निमाड़ी में भी
(उसके लिए)		श्रुतिमूलक य और व ध्वनियों
येका लेणऽ	एका लेणऽ	में श्रुति के स्थान पर स्वरों का ही
(इसके लिए)		प्रयोग होता है। अतः ये को 'ए' तथा
येको (इसका)	एको	'वो' को 'ओ' लिखा जाना शुद्ध है।
वोको (उसका)	ओको	
येका सी (इससे)	एकासी	
वोकासी (उससे)	ओकासी	
वोकामऽ (उसमें)	ओकामऽ	
येकामऽ (इसमें)	एकामऽ	
येकी (इसकी)	एकी	
वोकी (उसकी)	ओकी	
येका (इसके)	एका	
वोका (उसके)	ओका	

(घ)	येतरा म (इतने में)	एतरा म	ये, सर्वनाम 'यह' और 'वह' के
	वोतरा म (उतने में)	ओतरा म	परिमाणवाचक विशेष रूप हैं। इन पर
			भी उपरोक्त सूत्र लागू होता है।

2. नासिक्य की गूंज से उत्पन्न अशुद्धियाँ--

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	विवरण
नंऽ (और)	नऽ	नासिक्य व्यंजन की गूंज
मंऽ (में)	मऽ	को अनुनासिक ध्वनि
लावणूं (लाना)	लावणू	समझकर, अनुस्वार के चिह्न
गुताणूं (उलझना)	गुताणू	(बिंदी) का प्रयोग कर दिया
गाणूं (गाना)	गाणो/गाणू	जाता है, जो कि अनावश्क एवं
आणूं (गौना)	आणो	अशुद्ध है।
फुटाणां (भूने चने)	फुटाणा	
पैंजणीं (पायल)	पैंजणी	

3. योगात्मक-अयोगात्मक अशुद्धियाँ--

प्रचलित अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	विवरण
गायनऽ (गाय ने)	गाय नऽ	यहाँ कारकीय विभक्तियों के
गाय नऽ (गायें)	गायनऽ	योगात्मक/अयोगात्मक प्रयोग
गाय नन (गायों ने)	गायनऽ न	में भ्रम की स्थिति से उत्पन्न
गायनऽखऽ (गायों को)	गायनऽ खऽ	अशुद्ध रूपों के शुद्ध रूप दिए
गायनऽ भसी (गाय और भैंस)	गाय नऽ भसी	गए हैं। संज्ञा शब्दों के
गाय कालेण (गाय के लिए)	गायका-लेणऽ	साथ आनेवाली विभक्तियाँ
गायखऽ (गाय को)	गाय खऽ	विश्लिष्ट-(अयोगात्मक) होती
गायलऽ नऽ (गाय लो और)	गाय लऽ नऽ	है। अर्थात् अलग से लिखी
गाय लई नऽ (गाय लेकर)	गाय लईनऽ	जाती है।

4. विलंबित 'अऽ' की अशुद्धियाँ--

अशुद्ध प्रयोग	शुद्ध रूप	विवरण
बंडऽ (उधमी)	बंड	विलंबित 'अऽ' का अनावश्यक
खंब ऽ (खंभा)	खंब	एवं अशुद्ध प्रयोग,जानकारी
पड़ऽज (गिरता है)	पड़ज	के अभाव से होता है।
गलाऽमें (गले में)	गळा म	संबंधित अध्याय का
नाच ऽऽ (नृत्य करे)	नाचऽ	अवलोकन करें।
बाळो ऽ (बालक)	बाळो	

तूख (तुम्हें)	तुखऽ
सौंदारऽऽऽ (प्रातः)	सौंदारऽ
कुत्राऽ (कुत्ते)	कुत्रा/कुत्रा
लिखजऽ (लिखता है)	लिखज
पोर्‌याः होणऽ (लड़के)	पोर्‌या होण
पोर्‌यान होणी (लड़कों !)	पोर्‌यानऽ होणी
आवगऽ	आवऽगऽ
आवगाऽ (आएगा)	आवऽगा
ढेळऽ (दहलीज)	ढेळ

5. निषिद्ध ध्वनियों की अशुद्धियाँ--

प्रचलित रूप	निमाड़ी रूप	विवरण
अमृत	अमरित	
कृपा	किरषा	निमाड़ी लोक भाषा में ऋ, ञ,
मृग	मिरग	ङ, श, ष, क्ष, ज्ञ, श्र तथा
शराब	सराब/दारू	विसर्ग (:), ये नौ ध्वनियाँ
शक्कर	सक्कर	निषेधित हैं। अतः इनका प्रयोग,
धनुष	धनुस	भाषा में अशुद्ध माना जाता है।
मोक्ष	मुक्ति	इनसे बने अन्य संयुक्ताक्षर तथा
आज्ञा	अग्या	इनमें सम्मिलित एकमात्र स्वर ऋ
श्राद्ध	सराध	की मात्रा का प्रयोग भी निमाड़ी
शृंगार	सिंगार	में निषिद्ध है।
अञ्चुनी	अंचुनी	
गंङ्गाळ	गंगाळ	
दुःख	दक्ख/दुख	
ऋषि	~~रिसी~~ रिशि	

6. श्रुतिमूलक अशुद्धियाँ--

प्रचलित (अशुद्ध रूप)	शुद्ध (निमाड़ी) रूप	विवरण
कुवा	कुओ	हिंदी के समान ही निमाड़ी में भी
कुये	कुआ	जहाँ श्रुतिमूलक अर्थात् सुनने में 'य'

कुओं	कुआनऽ	अथवा 'व' का प्रयोग शब्दों में विकल्प
कौवा	कौओ	के रूप में होता है, वहाँ केवल स्वरों
कौये	कौआ	का ही प्रयोग किया जाता है। अतः 'य'
कौओं	कौआनऽ	को 'ए' और 'व' को 'अ' लिखा
येनऽ	एनऽ	जाता है।
वोनऽ	ओनऽ	
येतरो	एतरो	
वोकाम	औकामऽ	

7. अनुस्वार तथा अनुनासिक की अशुद्धियाँ--

प्रचलित (अशुद्ध रूप)	शुद्ध (निमाड़ी) रूप	विवरण
मुंडो (मुँह)	मुँडो	अनुनासिक की जगह अनुस्वार
कवं (कब)	कवँ	के प्रयोग की अशुद्धियाँ अनेक भाषाओं
जाऊंगा	जाऊँगा	में प्रायः दिखाई देती है।
अल्यांग (इधर)	अल्याँग	अनुस्वार, नासिक्य व्यंजनों का
मांजणू (माँझना)	माँजणू	प्रतिनिधि होता है जबकि अनुनासिकता
जांग (जाँघ)	जाँग	स्वरों की एक विशेषता है। इनका
डांडो (डाँडा)	डाँडो	प्रयोग सावधानी पूर्वक किया जाना
नांगो (नंगा)	नाँगो	चाहिए। इसके अतिरिक्त निमाड़ी के
बंदरी (बंदरिया)	वाँदरी	अधिकांश शब्दों में अनुनासिकता का
अंगळई (अंगुली)	अँगळई	लोप हो जाता है।
टाँकणो (टाँकना)	टाकणो	
झाँकणू (झाँकना)	झाकणू	
डांट (डाँट)	डाट	
दांत (दाँत)	दात	
कुँकू (कुंकू)	कूकू	
चोंच	चोच/टोंच	
सांप (साँप)	साप	

देशी-विदेशी भाषाओं के आगत शब्द

वट-पीपल के बीजों की तरह शब्द भी यायावरी हवाओं की तरंगों पर यात्रा करते हुए, एक भाषा से दूसरी भाषाओं के भू-भाग में जाकर अपनी जड़ें जमा लेते हैं। वहाँ पल्लवित होते-होते वहाँ की भाषायी संस्कृति में रचबस जाते हैं।

प्रागैतिहासिक काल से ही भारत का मध्यदेश, जिसमें निमाड़ी अंचल बसा हुआ है, भाषायी संस्कृति का प्रमुख केंद्र रहा है। विगत चार हज़ार वर्षों का इतिहास साक्षी है कि हरबार इस मध्य देश की भाषा ही देश की राष्ट्रभाषा के पद पर शोभायमान होती रही है। आष्ट्रिक, द्रविड़, वैदिक, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, खड़ी बोली तथा हिंदी समूह की अनेक बोलियों ने तथा निकटवर्ती भाषाओं ने निमाड़ी को प्रभावित किया है। इनके अलावा इस क्षेत्र के शासकों द्वारा लाई गई अरबी-फारसी, तुर्की, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेज़ी आदि देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी निमाड़ी में समावेश हुआ है।

1. निमाड़ी में अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द--

मराठी-

अक्खो (पूरा)	असो (ऐसा)	उंदरो (चूहा)
गरज (आवश्यकता)	उभ्या (खड़ा)	उस्टी (जूठी)
एड्यो (पागल)	पोर्‌या (लड़के)	कळस (कलश)
फळ (फल)	फरियाळ (फलाहार)	काळी (काली)
बयड़ी (टेकरी)	कुळ (कुल)	बायको (स्त्री)
बाळ (बालक)	भांडा (बर्तन)	कोयड़ो (सूखा)
कोळसा (कोयला)	मोठा (बड़ा)	रड़ (रोना)
चेंडू (गेंद)	लगीण (लग्न)	लेकरू (बच्चा)
डगाळ (टहनी)	चांगलो (अच्छा)	जूना (पुराना)
दग्गड़ (पत्थर)	वाट (रास्ता)	नणंद (ननंद)
सोळा (सोलह)	हाक (पुकार)	सगळा (पूरा)
एवड़ो (इतना)	कुत्रा (कुत्ते)	सासू (सास)

देउळ (मंदिर)	उन्हाळो (ग्रीष्म)	खांदो (कंधा)
डोळा (आँखें)	हत्ती (हाथी)	कोल्ह्यो (गीदड़)
कोळसा (कोयला)	मेण (मोम)	

राजस्थानी--

इण/इन (इस)	काँई (क्या)	उग्यो (उगा)
कुकड़ो (मुर्गा)	कुण (कौन)	कुत्तो (कुत्ता)
खेलण (खेलने)	ठिकाणो (ठिकाना)	झुलाड़सां (झुलाएँगे)
थारो (तेरा, तुम्हारा)	जाणू (जाना)	बेण/बईण (बहन)
म्हारो (मेरा)	मुँडो (मुँह	सगळा (पूरा
जद (यदि)		

गुजराती--

आवसे (आएगा)	छे (है)	जथो/जसो (जैसा)
तणाय/ताणी (तनकर)	जिण/जिन (जिन)	दीवी/दी (देदी)
जेबी/जेकी (जिसकी)	नानो (नन्हा)	तम/तुम (तुम)
पछी (पीछे)	तारा/थारा (तेरा, तुम्हारा)	बैन/बर्हण (बहन)
मारा/म्हारा (हमारा)		

भीली--

अंगूठो (अंगूठा)	अगाड़ी (आगे)	आंगणू (आँगन)
आटो-साटो (अदल-बदल)	आमली (इमली)	उंदरो (चूहा)
कमती (कम)	कामठी (धनुष)	कीड़ी (चिऊँटी)
केड़ो (बछड़ा)	खोळो (गोद)	घणो (प्रचुर)
गाबड़ू/गाबड़ो (गर्दन)	छमटी (दुम)	टापरो (झोपड़ी)
डांगरो (सरदा, खरबूज)	ताकड़ी (तराजू)	दळीद्र (दरिद्र)
पराळ (भूसा, घास)	फुआजी (फूफाजी)	भिलट (लोक देवता)
लुगड़ो (साड़ी)	वखाणू (प्रशंसा करूँ)	डोकरी (वृद्धा)

मालवी--

अकड़णो (ऐठना)	अँई-वंई (यहाँ-वहाँ)	अंगारो (अँगारा)
अमली (इमली)	अम्मल (अफीम)	आलो (भीगा हुआ)
इतराणो (इठलाना)	उंदरी (चुहिया)	एतरोज (इतना ही)

ओटलो (घर के आगे का चबूतरा)		काबरो (चितकबरा)
खांदा (कंधे)	गरज (आशय, प्रयोजन)	गिंडोळा (केंचुएँ)
घुटको (घूँट)	चियां (इमली के बीज)	
टिक्कड़ (जुआर-बाजरे की मोटी रोटी)	जिमणो (भोजन करना)	
डोलो (पालकी उत्सव)	ढेर्‌यो (भेंगा)	तक्यो (तकिया)
थोबणो (रुकना)	दखणा (दक्षिणा)	दुफेर (दोपहरी)
न्हार (शेर)	नवी (नई)	बामण (ब्राह्मण)
नातरा (विधवा का पुनर्विवाह)	नांदणो (संबंध निभाना)	पुड़ (तह, संपुट)
पनाळी (परनाली, गटर)	बिलमाणो (बहलाना, भरमाना)	
भपकणो (भभकना)	मोकलो (स्वच्छंद)	
भांडणो (चिल्लाना)	मोजड़ी (बूटेदार कैनवास की जूती)	
लाड़की (दुलारी, प्यारी)	वागुल (जुगाली)	
ल्होड़ो/ल्होयड़ो (सिल का बट्टा, लोढ़ा)	संचरो (पापड़-खार, सब्जी)	

2. निमाड़ी में विदेशी भाषाओं के शब्द--

अरबी--

अक्ल/अक्कल	अदालत	अमीर	औलाद
इज्जत	इजार (पाजामा)	इतल्लो	इतवार (रविवार)
इतबार (विश्वास)	इलाको	इमारत	इतमिनान

(टिप्पणी-निमाड़ी में रविवार को दितवार भी कहा जाता है। दितवार शब्द संस्कृत के आदित्यवार का अपभ्रंश है।)

इजाफो	इंसाफ	इंतिजाम	कतल
कब्जो	कबूल	करामात	कसई
कसूर	काबिज	कुदरत	खंजर
खारिज	खिलाप	गरज	गुलाम

जमा	जमादार	जमानत	जमानो
जरवत	जारी	जिकर	जुलुम
जमात	जमानो	जरियो	जरूर
जरा	जवाब	जाकिट	जायको
तकरार	तालीम	तासीर	दलाल
दौलत	दलील	नवाब	नजरानो
नाबालिक	फौज	फौत (मृत्यु)	बखत
बरकत	बयानो	बरकत	बिसात
बिना	बिलकुल	मरजी	मर्तबा
मवेसी	महकमो	मात	मातम
मायूस	माफी	माल	माहिर
मियाद	मुकाम	मुनाफो	मोहलत
मुंसी	मालिक	मुकाबलो	मुनासिब
मोहल्लो	मौसम	रईस	रकम
रफू	रुबाब	लबादो	लायक
वकील	बजन	वजे	वायदो
सक	सफर	सफई	सला (सलाह)
सलामत	सवाल	सिवाय	सोबत
हजम	हजामत	हुजूर	हरारत
हरामी	हया	हवा	हाजरी
हाल	हासिल	हैरान	

फारसी--

अगर	अरजी	आबाद	आईनो
आवाज	आवारा	कम	कमर
अमल	अमली	आजमाणू	उजाड़
कमजोर	कमान	कमीनो	कस्बो
कागज	कुस्ती	कबूतर	खरबूजो
खुद	खून	गरदन	गरमी
गवा (गवाह)	गुब्बो (गुंबा)	चालाक	चिलम

चाबुक	चाबी	चसमो	चुगली
जखम	जगा (जगह)	जमीन	जरी
जायजात	जानवर	जान	जहेर
जागीर	जिनगी	जोर	तकत (तख्त)
ताज	तीर	तालुक	तमाखू
तक्यो (तकिया)	तगारी	तपाक	तपकड़ी (तबाक)
तमाचो	तेज	दम	दरजी
दरवाजो	दस्त	दिल	दीदा
दीमक	दीवाल	दुकान	दुबारा
दुमची (दुम)	दवा	दरद	दरबार
दसकत	धैसत (दहसत)	दुसमन	नखून
नौकर	नौबत	नतीजो	नजदीक
नमकीन	नरम	नसो (नशा)	नाजुक
निघा (निगाह)	नतीजो	नवाड़ (निवार)	निसाणी (निशानी)
परेसान	पसंद	पेसो (पेशा)	पेसगी
पेसी	पैदा	फिराक	फरमाइस
फरियाद	बगल	बहादर	बादसा
बरफ	बदाम	बाजी	बारीक
बिस्तर	मैदान	मसक	महेरबानी
मेवो	मजूरी	मरद	मुरगी
मुरदो	याद	यार	रंगीन
रस्तो (रास्ता)	रिस्तो	रूमाल	रेसम
लिहाज	राय	लेकिन	सक्कर
सरकार	सरदार	सरदी	सादगी
साल	सिपई (सिपाही)	सुरमो	स्याबासी (शाबासी)

तुर्की--

कलगी	काबू	गलीचो	कैंची
तमगो	तोप	दरोगा	बवर्ची
चकमक	चक्कू (चाकू)	मुचलको	

पुर्तगाली--

अलमारी	अलपिन	गोभी	चाबी	अचार
पीपो (पीपा)	बाल्टी	तमाखू	बोतल	गमला
कप्तान	पादरी	मेज	कंसरो (कनस्तर)	
पिस्तोल	लिल्लाम (नीलाम)	संतरो		
कारिस्तानी	गोदाम	कमीज, साबुन, चाबी, तिजोरी, फालतू		

फ्रांसीसी--

अंगरेज	कारतूस	बम	
तुरुप	कूपन	बिगुल, पुलिस	

अंग्रेजी--

अरदली	इसकुल	अफसर	अस्पताल
आडर	इंजन	एकड़	एरियल
कंट्रोल	करेंट	कंपनी	कापी
काफी	कमेटी	कमीसन	कमिस्नर
कुनेन	कार	कंपोडर	कंपूटर
ग्यारंटी	गिलास	गनी	चेन
चुरुट	जेल	टायर	टाकीज
टेबल	टेम	टेसन	डायरी
डिपो	डिगरी	टीन	थेटर
टेक्स	टेक्सी	टंकी	टेलीफोन
ट्रक	डेरी	ड्रामो	दरजन
नरस	पलस्तर	पेसिंजर	पालिस
पारसल	पेंसन	पिपरमेंट	पुलिस
पोल्टिस	फारम	फरलांग	फाइन
पेन	फ्राक	फोटो	बकसुओ
बुरुस	बिगुल	बाल्टी	बोट
बैरंग	बक्सो	बनियान	बरांडी
मनिआडर	मेनेजर	मसीन	माचिस
मास्टर	मिनिट	मील (आधा कोस)	मिल (चक्की)

सिगरेट, बॉटल, बोतल

मेम	मेस	मोटर	रंगरूट
रजिस्टर	रिपोट	रबड़	रसीद
रासन	रेल	लाट (लार्ड)	लालटेन
लाइन	लेन	नोट	नोटिस
वारनिस	वारंट	सम्मन	सिनिमा
स्लेट	सिंगल	सिगनल	होटल

चीनी – तूफान, फटका, चाय
यूनानी - टेलीफोन, एटम
जापानी – रिक्छा

मणिमोहन चवरे 'निमाड़ी'

जन्म : 14 जनवरी, 1949, खंडवा
(मध्य प्रदेश)

शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी/अर्थशास्त्र),
नृत्य-विशारद

प्रकाशन : म्हारो देस निमाड़,
आपड़ी की धापड़ी,
क्रांतिवीर भास्करराव चवरे,
निमाड़ी का भाषा-विज्ञान, वर्ण
और वर्तनी

संपादन : स्मृति चित्र,
वायुसेनीय जगत,
इंडियन एयरफोर्स जर्नल,
मलुआ समाचार,
राजस्थान रा गीत,
जै जवान जै किसान

अभिरुचि : लेखन, निर्देशन,
मंच संचालन,
नृत्य संयोजन आकाशवाणी से चिंतन,
वार्ता एवं साक्षात्कार

संप्रति : स्वतंत्र लेखन,
सेवानिवृत्त वारंट ऑफिसर (भा.वा.से.)

संपर्क सूत्र:
सी-1 स्नान सिगनल, डी.वाई. पाटिल कॉलेज रोड,
सेक्टर-29, पी.सी.एन.टी. पुणे-411 044
फोन : +91 9850980334 / 020-27641131
ई-मेल : mmchourey@gmail.com

मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, भारत